वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

वर्ष ५७ अंक 5 मई २०१९

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मई २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक ५

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. गंगा-स्तुति: १९७
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) १९७
३. सम्पादकीय : युवा-शक्ति के दो महान आदर्श-पुरुष : श्रीहनुमानजी और ... १९८
४. (बच्चों का आँगन) भारत-भारती कवि मैथिलीशरण गुप्त जी २००
५. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२९) २०१
६. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (६/३) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) २०३
७. साधुओं के पावन प्रसंग (५) (स्वामी चेतनानन्द) २०७
८. सेवा के विभिन्न आयाम (स्वामी ओजोमयानन्द) २०९
९. (कविता) माँ तेरी कृपा क्या! (आनन्द कुमार पौराणिक) २१३
१०. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१७) (स्वामी अखण्डानन्द) २१४
११. अहिंसा परमो धर्म: (स्वामी ब्रह्मेशानन्द) २१६
१२. (प्रेरक लघुकथा) तीरथ को जाइए, करके हृदय साफ (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) २१९
१३. सारगाछी की स्मृतियाँ (७९) (स्वामी सुहितानन्द) २२०
१४. (युवा प्रांगण) उदार व्यवहार (स्वामी मेधजानन्द) २२२
१५. मुण्डक-उपनिषद-व्याख्या (११) (स्वामी विवेकानन्द) २२३
१६. काव्य सरिता
प्रभु की कृपा अपार (भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') बिहरैं श्रीभगवान अवध में (स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती) सोनेवाले ओ मुसाफिर (विजय कुमार श्रीवास्तव) २२६

१७. आध्यात्मिक जिज्ञासा (४१)
(स्वामी भूतेशानन्द) २२७
१८. अद्भुत लोगों का सान्निध्य
(नन्दलाल टाँटिया) २२८
१९. स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१५)
(प्रव्राजिका व्रजप्राणा) २३०
२०. इष्ट-नाम का जप और ध्यान करें
(स्वामी सत्यरूपानन्द) २३२
२१. ईशावास्योपनिषद (१७)
(स्वामी आत्मानन्द) २३३
२२. समाचार और सूचनाएँ २३५

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का यह नवनिर्मित सार्वजनीन मन्दिर रामकृष्ण मिशन, औरंगाबाद का है । मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा और लोकार्पण १७ नवम्बर, २०१८ को जगद्धात्री पूजा के पावन अवसर पर हुआ था ।

मई माह के जयन्ती और त्योहार

१	रामकृष्ण मिशन स्थापना दिवस
९	शंकराचार्य, सूरदास जयन्ती
१८	बुद्ध पूर्णिमा

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
मदर इंडिया सिक्युरिटी प्रा. लि., फोर्ट, मुम्बई	१०,०००/-

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है । विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है । आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें । विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है । **२.** रचना बहुत लम्बी न हो । पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय । पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो । आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं । **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें । **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें । अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें । **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा । न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा। **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें । यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें ।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५५४.	श्री आदिनाथ नीरज दापके, भारत नगर, नागपुर (महा.)	शा. रामभजन राय एन.ई.एस.महाविद्यालय,जशपुर नगर (छ.ग.)
५५५.	श्री विनय कुमार मल्लिक, बेला, मुज़फ्फरपुर (बिहार)	मिथिला मातृ मंदिर पुस्तकालय, बेलाराही, जि.-मधुबनी (बिहार)
५५६.	श्री अनुराग, (स्मृति में श्रीरामराज,एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	नामरूप कॉलेज, मु./पो. पर्बतपुर, जिला - डिब्रूगढ.(असम)
५५७.	,, ,,	गवर्नमेंट कॉलेज, मु./पो. नसरुल्लागंज, जि.- सीहोर (म.प्र.)
५५८.	,, ,,	लरंगसाय शा. महाविद्यालय, रामानुजगंज, जि.- बलरामपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५७ मई २०१९ अंक ५

गङ्गा-स्तुतिः

गङ्गैव धर्मः खलु मोक्षदायी
गङ्गासुखञ्चार्थरूपाऽपि गङ्गा ।
चतुर्विधस्याऽपि सुखस्य दात्रीं
गङ्गां भजेद्विष्णुशिवप्रियो यः ।।

– श्रीगंगाजी ही धर्म और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं । श्रीगंगाजी सुख और समृद्धिरूपिणी हैं । विष्णु और शिव के प्रेमी भक्तों को चारों सुख प्रदान करनेवाली श्रीगंगाजी का भजन करना चाहिए ।

सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां
करधृतकलशोद्यतसोत्पलामत्यभीष्टाम् ।
विधिहरिहररूपां सेन्दुकोटीरचूडां
कलितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ।।

– श्वेत मकर पर विराजमान, शुभ्रवर्णवाली, तीन नेत्रोंवाली, दो हाथों में पूर्ण कलश तथा दो हाथों में सुन्दर कमल धारण किये हुए, भक्तों के लिए परम इष्ट, ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों का रूप अर्थात् तीनों के कार्य करनेवाली, मस्तक पर सुशोभित चन्द्रजटित मुकुटवाली तथा सुन्दर श्वेत वस्त्रों से विभूषित माँ गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ ।

पुरखों की थाती

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।६३८।।

– महापुरुष लोग (परिस्थिति के अनुसार) कभी तो वज्र से बढ़कर कठोरता का व्यवहार करते हैं और कभी फूल से भी अधिक कोमलता का आचरण करते हैं, अतः उनके चित्त की गति को भला कौन समझ सकता है! (उत्तररामचरित)

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्तेतु षोडषे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत् ।।६३९।।

– बच्चे को पाँच वर्षों तक दुलारना चाहिये, उसके बाद दस वर्षों तक उस पर कठोरता दिखानी चाहिये, परन्तु सोलह वर्ष का हो जाने के बाद उसके साथ मित्र के समान आचरण करना चाहिये। (मनु)

निःस्वो वष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपः
लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति ।
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिः ब्राह्मं पदं वाञ्छति
ब्रह्मा शैवपदं शिवो हरिपदं चाशावधिं को गतः ।।६४०।।

– अकिंचन व्यक्ति सौ रुपये पाने की आशा करता है, सौ रुपयों वाला हजार की इच्छा करता है, हजार वाला लखपति बनने की कामना रखता है, लखपति व्यक्ति राजा बनना चाहता है, राजा चक्रवर्ती सम्राट् होने की आकांक्षा रखता है, चक्रवर्ती इन्द्र का पद पाना चाहता है, इन्द्र ब्रह्मा का पद पाने के इच्छुक हैं, ब्रह्माजी शिव का पद पाना चाहते हैं और शिव हरि का पद पाने की अभिलाषा करते हैं – इस संसार में भला कौन आशा के परे जा सका है!

युवा-शक्ति के दो महान आदर्श-पुरुष : श्रीहनुमानजी और स्वामी विवेकानन्द

(गतांक से आगे)

स्वामी विवेकानन्द जी ने भी अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण की आज्ञाओं का पालन, संघर्ष की विषम परिस्थिति में किया। घर की स्थिति अतिशय दयनीय हो गई थी। बड़े भाई होने के नाते अपने छोटे-छोटे भाई-बहनों और माँ का उत्तरदायित्व कंधों पर था, किन्तु उनके गुरु श्रीरामकृष्ण देव ने उनके गुरुभाइयों और संघ का जो दायित्व उन्हें दिया, वे उसके संरक्षण-वर्धन और गुरुदेव के शाश्वत विचारों के प्रचार-प्रसार में लग गए। सम्पूर्ण देश में उन्होंने भ्रमण किया। विदेशों में अत्यन्त कष्ट सहे, किन्तु गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर उनके द्वारा प्रदत्त आध्यात्मिक विरासत रूपी उत्तरदायित्व को पूर्ण किया।

प्रबल वैरागी और लौकिक ऐश्वर्य निर्लोभी

श्रीरामभक्त हनुमान को कभी भौतिक ऐश्वर्य का मोह स्पर्श तक नहीं कर सका। जिस माया के राज्य में स्वर्ण और सुन्दरी जीव को मोहित कर बन्धन में डाल देते हैं, उसे कर्तव्यच्युत कर लक्ष्यभ्रष्ट कर देते हैं और उसे तरह-तरह की यातनाएँ देते हैं, उस मायानगरी लंका का कोई भी ऐश्वर्य हनुमानजी को मुग्ध नहीं कर सका। गोस्वामीजी ने लिखा –

कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना।।
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहीं बनै।।

लंका/ २/छन्द

विचित्र मणियों से जड़ा हुआ, सोने का परकोटा, उसमें बहुत-से सुन्दर घर हैं। चौराहे, सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं।। सुन्दर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ है। हाथी, घोड़े खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है! अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं, उनकी अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती।

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।।

– बन, बाग-बगीचे, फुलवारी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गन्धर्वों की कन्याएँ अपने सौन्दर्य से मुनियों के भी मनों को मोह लेती हैं। ऐसी लंका में जाकर हनुमानजी ने क्या किया?

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।

ऐसी मोहिनी सुन्दर लंका में हनुमानजी ने रात्रि में प्रत्येक भवन में प्रवेश कर सीताजी की खोज की। लंका के विभिन्न ऐश्वर्य और भोग-विलास उन्हें तनिक भी प्रभावित नहीं कर सके। विभीषणजी के पास जाकर सीताजी का पता लगाने के बाद ही उन्होंने शान्ति की साँस ली।

ठीक ऐसी घटना हम स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में भी पाते हैं। जब स्वामीजी भारत-भ्रमण करने के बाद विश्वधर्म-सम्मेलन में व्याख्यान देने के लिए हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि बनकर शिकागो गए थे, उस समय का यह प्रसंग है। स्वामीजी अपने दैवी ओजस्वी व्याख्यान से अमेरिकावासियों के हृदयहार बन गए थे। वहाँ उनका अद्भुत सम्मान हुआ। अमेरिका में उनके बहुत-से लोग अनुयायी बन गए। कई जगह वे व्याख्यानों के लिये जाने लगे। वहाँ की व्यवस्था, वहाँ के विकास और नारी-शिक्षा की स्वामीजी ने प्रशंसा भी की, लेकिन वहाँ के भौतिक ऐश्वर्य कभी स्वामीजी को नहीं स्पर्श कर सके और न ही वे उनके उद्देश्य से उन्हें विचलित कर सके। वहाँ भी मानो भारत की समृद्धि-शान्तिरूपिणी सीताजी का मार्ग खोजते रहे और अन्त में उसे पाकर ही वे शान्त हुए और भारत की ओर प्रस्थान किए। इसकी साक्षी अमेरिका की वह रात्रि है, जिसमें स्वामीजी रुदन करते हुए माँ से प्रार्थना करते हैं – "हे माँ ! मैं इस नाम-यश को लेकर क्या करूँ, जबकि मेरे देशवासी घोर निर्धनता में डूबे हुए हैं ! हम गरीब भारतवासी ऐसी बुरी हालत तक पहुँच गए हैं कि

मुट्ठी भर अन्न के अभाव में लाखों लोग प्राण त्याग देते हैं और यहाँ लोग अपने व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिये लाखों रुपये खर्च कर देते हैं ! भारत की जनता को कौन उठाएगा? कौन उनके मुख में अन्न देगा? मैं उनकी किस प्रकार सेवा कर सकता हूँ?'' ऐसा था स्वामी विवेकानन्द का प्रबल वैराग्य और ऐश्वर्य-निर्लोभी व्यक्तित्व।

शक्ति-संचारक

हनुमानजी और स्वामी विवेकानन्द जी के स्मरण मात्र से मन में शक्ति का संचार होता है। भगवान के कार्य हेतु श्रीहनुमानजी में विपुल बल का संचार हुआ था। जैसे ही जामवन्तजी ने हनुमानजी से कहा कि इस संसार में तुम्हारे लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है, श्रीराम के कार्य हेतु ही तुम्हारा आविर्भाव हुआ है, इतना सुनते ही हनुमानजी की अनन्त शक्ति प्रकट हो गई –

कनक बरन तन तेज बिराजा।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा।।
सिंहनाद करि बारहिं बारा।
लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा।।
सहित सहाय रावनहि मारी।
आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।।

किष्किंधाकांड ३०/३-५

– सुनते ही हनुमानजी पर्वताकार हो गए। स्वर्ण-सा रंग और शरीर में तेज आ गया, मानो कोई दूसरा पर्वतराज खड़ा हो। हनुमानजी ने बार-बार सिंहनाद कर कहा कि मैं इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ। मैं सहायकों सहित रावण को मारकर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ।

इस प्रकार भगवान के कार्य का स्मरण करते ही हनुमानजी की अतुल शक्ति अभिव्यक्त हुई थी।

स्वामी विवेकानन्द जी ने पूरे देश में युवकों में बल का संचार करने के लिए शक्तिमन्त्र का उद्घोष किया। उन्होंने युवाशक्ति के कर्तव्य और उनके उत्तरदायित्व को याद दिलाया और भावी समृद्ध भारत और शान्तिमय विश्व के निर्माण के लिये आह्वान किया –

''हे मेरे युवक बन्धुओ ! बलवान बनो, यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। ... बल ही जीवन है और दुर्बलता ही मृत्यु है। बल ही अनन्त सुख है और अमर तथा शाश्वत जीवन है और दुर्बलता ही मृत्यु है। सफल होने के लिये प्रबल पुरुषार्थ चाहिए। मन का अमित बल चाहिए। पुरुषार्थी साधक कहता है, 'मैं चुल्लू से समुद्र पी जाऊँगा। मेरी इच्छा मात्र से पर्वत चूर-चूर हो जाएँगे।'' निराश मत होओ। मार्ग बड़ा कठिन है, छुरे की धार पर चलने के समान दुर्गम है, फिर भी निराश मत होओ – उठो, जागो और चरम लक्ष्य को प्राप्त करो। अपने आप पर विश्वास करो, सब शक्ति तुममें है, इसे जान लो और इसे प्रकटो करो। प्रसन्न होओ और इस बात का विश्वास रखो कि प्रभु ने बड़े-बड़े कार्य करने के लिए हमलोगों को चुना है और हम उन्हें करके ही रहेंगे। सिंह गर्जन के साथ आत्मा की महिमा घोषित करो। जीव को अभय देकर कहो – **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान् निबोधत।''**

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द जी ने युवकों में महाबल का संचार किया और उन्हें अपने चरित्र-गठन कर उसे राष्ट्र-निर्माण में संलग्न किया। स्वयं स्वामी विवेकानन्द जी हनुमानजी के बारे में कहते हैं – ''महावीर के चरित्र को ही तुम्हें इस समय आदर्श मानना पड़ेगा। देखो न, वे राम की आज्ञा से समुद्र लाँघकर चले गये ! – जीवन-मृत्यु की परवाह कहाँ? महाजितेन्द्रिय, महाबुद्धिमान, दास्यभाव के उस महान आदर्श से तुम्हें अपना जीवन गठित करना होगा। वैसा करने पर दूसरे भावों का विकास स्वयं ही हो जाएगा। दुविधा छोड़कर गुरु की आज्ञा का पालन और ब्रह्मचर्य की रक्षा, यही है सफलता का रहस्य ! नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय – अर्थात् अवलम्बन करने योग्य दूसरा पथ नहीं है। एक ओर हनुमानजी के जैसा सेवाभाव और दूसरी ओर उसी प्रकार त्रैलोक्य को भयभीत कर देनेवाला सिंह जैसा विक्रम !'' (वि.सा. ६/१९६)

हनुमानजी और स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन के कई ऐसे प्रसंग हैं, जो युवाओं के लिये प्रेरणास्रोत हैं, उनके लिए ये दोनों आदर्श हैं।

रघुकुलनायक दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी भगवान के अवतार हैं, उनकी महिमा अनिर्वचनीय है। श्रीराम और श्रीरामकृष्ण देव के अवतार-उद्देश्य को पूर्ण करने में परम सहयोगी अनन्य सेवकों श्रीहनुमानजी और स्वामी विवेकानन्द जी का संघर्षमय और प्रभु-समर्पित जीवन युवाशक्ति को प्रेरणा देगा। ○○○

भारत-भारती कवि मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी स्थित चिरगाँव में ३ अगस्त, १८८६ को हुआ था। उनका जन्म वैष्णव परिवार में हुआ था। उनके पिता उन्हें बचपन में भगवान की कथाएँ सुनाते और संस्कृत के श्लोक कंठस्थ कराते थे। उनके पिताजी बड़े ही आचारनिष्ठ, पूजापाठ करने वाले थे। अपने पिताजी के बारे में वे कहते थे, ''मैं उस समय पाँच-सात वर्ष का रहा होऊँगा। पिताजी रात रहते ही उठकर प्रात:स्मरण करते थे, फिर हम लोगों को जगा कर (भगवान के) नाम की महिमा याद कराते थे...फिर ध्रुव की कथा सुनाते। इसी प्रकार और भी कितनी कथाएँ सुनाते।'' उनके पिताजी ने एक 'रहस्य-रामायण' पुस्तक भी लिखी थी। गाँव में वे लोगों से रामायण के अनेक पाठ करवाते थे।

मैथिलीशरण गुप्त जी की प्रारम्भिक पाठशाला गाँव के ही एक अहाते में थी और वहीं पर लगभग तीस बच्चे एक साथ बैठकर पढ़ते थे। उन्हें बचपन में चकरी फिराने, पतंग उड़ाने, गुल्ली-डंडे का खेल बहुत पसन्द था। वे बहुत धमाचौकड़ी करते और नए-नए खेल प्रयोग करते। किन्तु उनकी नटखटता से उनके पिता से उनको कभी डाँट नहीं मिली। वे अपने पिता के बारे में कहते, ''हम लोगों को कभी उनसे पिटने का भय न था, हमने उनका अथाह वात्सल्य ही प्राप्त किया था। हम लोगों की इच्छाएँ पूरी करके वे हमसे भी अधिक आनन्द प्राप्त करते थे।''

उनका परिवार एक प्रकार से समृद्ध ही था। उनके पिताजी उनके गाँव चिरगाँव में रामलीला और कृष्णलीला का आयोजन कराते थे। पहले के समय में गाँवों में रामलीला और कृष्णलीला के ही नाटक अधिक हुआ करते थे। पूरा गाँव ऐसे कार्यक्रमों में जुटता था।

बचपन में आयुर्वेद, संगीत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद मैथिलीशरण जी हिन्दी साहित्य भी पढ़ने लगे। बचपन में उन्हें मुंशी अजमेरी जी पढ़ाते थे। मुंशी अजमेरी जी की प्रेरणा से उन्होंने हिन्दी साहित्य के अनेक ग्रन्थ पढ़ना प्रारम्भ किए थे। वे स्वयं भी कहते थे कि उनका गीत-कवित्त की ओर आकर्षण होने का अधिकांश श्रेय मुंशी अजमेरी जी को ही जाता है। मैथिलीशरण जी ने बचपन में 'लघुसिद्धान्त-कौमुदी' और 'अमरकोष' जैसे ग्रन्थ भी पढ़े थे।

गुप्तजी की इन सब विद्याओं के पीछे उनके पिता की प्रेरणा ही थी। उनके पिता संस्कृत के अनेक पण्डितों को बुलवा कर उन्हें संस्कृत सिखवाते थे। गुप्तजी ने जब कविता लिखना शुरू की, तब व्रजभाषा में लिखना शुरू की। तब वे केवल दोहा, चौपाई और छप्पय ही लिखा करते थे। उन्हें पहले-पहल व्रजभाषा में लिखना अच्छा लगता था। उस समय समस्त भारत में हिन्दी की पत्रिका 'सरस्वती' का बहुत नाम था, जिनके सम्पादक महावीरप्रसाद द्विवेदी जी थे। गुप्तजी ने अपनी एक कविता 'सरस्वती' में भेजी, किन्तु वह अस्वीकृत हुई। वह अन्य पत्रिका में प्रकाशित हुई। उनकी दूसरी कविता 'हेमंत' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। यह उनकी 'सरस्वती' में प्रथम कविता थी। इसके बाद उनकी और भी कविताएँ छपती गईं। महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से उन्होंने अपनी कविताएँ खड़ीबोली में लिखना शुरू की।

मैथिलीशरण गुप्त के बहु-चर्चित काव्य संग्रह थे – साकेत, पंचवटी, सैरन्ध्री, भारत-भारती, झंकार, स्वदेश संगीत इत्यादि। इसके अलावा उन्होंने कई नाटक भी लिखे थे। गुप्तजी को सर्वाधिक उनके भारत-भारती काव्य के लिए स्मरण किया जाता है। इसकी रचना उन्होंने तब की थी, जब आजादी के लिए हमारे देश में चारों ओर संग्राम चल रहा था। अपनी अद्भुत काव्य-रचनाओं के कारण वे 'राष्ट्र कवि' कहलाए। शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण सम्मान प्रदान किया गया। १२ दिसम्बर, १९६४ को उनका निधन हुआ। हाल ही में मध्य प्रदेश में उनके जन्म दिवस को कवि-दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया है। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२९)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

२७ अक्तूबर, मिस मैक्लाउड को रविवार की रात स्वामीजी अन्दर आये और मुझे आशीर्वाद प्रदान किया। करीब घण्टे भर थे। प्रत्येक महान् अवतार या तो प्रकट रूप से अथवा गुप्त रूप से मातृ-उपासक था – उन्होंने मुझे श्रीरामकृष्ण के इस दृढ़ विश्वास की बात कही। ''नहीं तो उन्हें शक्ति कहाँ से मिलती?'' वे शिव और काली की उपासना करने को बाध्य थे। इसके बाद वे रामायण पर चर्चा करने लगे। मैं तुम्हें एक बड़ी विचित्र बात बताती हूँ। जब सदानन्द रामायण के बारे में बोलते हैं, तो मुझे लगता कि हनुमान ही उसके सच्चे नायक हैं; और जब स्वामीजी उस पर बोलते हैं, तो लगता कि रावण ही उसका केन्द्रीय चरित्र है। ...

राम को 'कमल-लोचन' कहते हैं। उन्होंने सीता को वापस पाने के लिए जगदम्बा से प्रार्थना की थी। परन्तु रावण ने भी जगदम्बा से प्रार्थना की थी। राम जब माँ के पास गए, तो देखा कि रावण उनकी गोद में बैठा हुआ है। उन्हें लगा कि माँ की कृपा पाने के लिए उन्हें कुछ विशेष करना होगा। अत: उन्होंने संकल्प किया कि माँ की सहायता पाने के लिए वे १०८ नीले कमलों से उनकी मूर्ति की पूजा करेंगे। हनुमान जाकर पूरे कमल जुटा लाए और श्रीराम 'महाशक्ति का आवाहन' करने लगे। (वे शरद् ऋतु के दिन थे, जबकि माँ की पूजा वसन्त ऋतु में हुआ करती है, अत: श्रीराम की पूजा की स्मृति में ही तब से जगदम्बा की पूजा शरद् ऋतु में भी हुआ करती है।) श्रीराम माँ के चरणों में नीले कमल चढ़ाने लगे। वे एक सौ सात कमल चढ़ा चुके थे, तब पता चला कि एक कमल खो चुका है (उसे माँ ने छिपा दिया था)। परन्तु श्रीराम दृढ़प्रतिज्ञ थे। वे हार माननेवाले न थे। उन्होंने एक छुरी मँगवाई और नीले कमलों की संख्या पूरी करने हेतु जब वे अपनी एक आँख को ही काटकर निकालने जा रहे थे, तभी माँ प्रकट हो गईं। उन्होंने प्रसन्न होकर महानायक को आशीर्वाद दिया और फिर युद्ध में वे ही विजयी हुए। वैसे रावण केवल श्रीराम के अस्त्रों के कारण नहीं, बल्कि अन्तत: अपने भाई के विश्वासघात के कारण पराजित हुआ था।

स्वामीजी बोले, ''परन्तु एक दृष्टि से वह विश्वासघाती भाई भी महान् था, क्योंकि उसे श्रीराम के दरबार में रहने का सौभाग्य मिला था। अपने पति तथा पुत्र का वध करनेवाले वीर का मुख देखने के उद्देश्य से रावण की विधवा पत्नी उसी दरबार में आई। श्रीराम तथा उनके सभी दरबारी उनका स्वागत करने को खड़े हो गए, परन्तु उन्होंने बड़े ही विस्मयपूर्वक देखा कि वहाँ तो वैभवपूर्ण राजमहिषी के स्थान पर हिन्दू विधवा के वेश में एक साधारण-सी महिला खड़ी थी। आश्चर्यचकित होकर उन्होंने विभीषण से पूछा, 'यह महिला कौन है?' उत्तर मिला, 'महाराज, ये ही वे सिंहिनी है, जिनको आपने उनके पति तथा शावकों से वंचित कर दिया है! वे आपका दर्शन करने आई हैं।'''

ओह युम, नारीजाति के आदर्श के विषय में स्वामीजी कैसी महान् धारणा का पोषण करते हैं! ऐसी अद्भुत धारणा हमें शेक्सपियर में, एस्चिलस के एंटीगान या सोफोक्लेस के एल्सेस्टिस में भी नहीं मिलती। इस आदर्श के विषय में उन्होंने मुझे जो कुछ बताया था, उसे जब मैं (दुबारा) पढ़ रही थी, (निवेदिता चर्चा का सारांश लिखकर रख लेती थीं) तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि यह सब, इसका प्रत्येक शब्द, पूरे विश्व के, परन्तु प्रथमत: तथा मुख्यत: उनके अपने देश की भावी नारियों के लिए विश्वास से परिपूर्ण है। उस आदर्श के अनुरूप कोई अपना जीवन गढ़ सकता है या नहीं, यह कोई बड़ी बात नहीं लगती।

मंगलवार की रात को वे भक्ति के महान् भाव से अभिभूत थे और हमें ऋषिकेश तथा वहाँ के प्रत्येक संन्यासी के द्वारा बनाई जानेवाली कुटिया के बारे में बताने लगे। वे बोले कि शाम के समय सभी संन्यासी प्रज्वलित धूनी के चारों ओर अपने-अपने आसन पर बैठते हैं और धीमे स्वर में उपनिषदों पर चर्चा करते हैं। 'क्योंकि ऐसी मान्यता है कि व्यक्ति को संन्यास लेने के पूर्व ही सत्य का बोध हो जाना चाहिए।

बौद्धिक रूप से वह शान्ति में प्रतिष्ठित हो चुका होता है, केवल अनुभूति ही बाकी रह गई है, अत: सारे तर्क-वितर्क की आवश्यकता समाप्त हो चुकी होती है और अब उसे ऋषिकेश के पर्वतों के अँधियारे में धूनी के किनारे बैठकर उपनिषदों पर चर्चा मात्र करनी है। फिर क्रमश: आवाजें बन्द हो जाती हैं और निस्तब्धता छा जाती है। प्रत्येक संन्यासी अपने-अपने आसन पर सीधा होकर बैठा रहता है और उसके बाद वे बिना कोई आवाज किए एक-एक करके उठकर अपनी-अपनी कुटिया में चले जाते हैं।

बुधवार को वे विभिन्न समय इसी तरह की बातें कहते रहे। एक बार वे उच्छ्वसित होकर एक ऐसा वाक्य बोले, जिससे बढ़कर कोई भी बात मैंने अब तक उनसे नहीं सुनी – ''हिन्दू धर्म का एक महान दोष यह है कि इसमें केवल त्याग के आधार पर ही मुक्ति की व्यवस्था है। इसके फलस्वरूप गृहस्थ हीन भावना के शिकार होते हैं। वे खुद को केवल कर्म करने के उपयुक्त समझते हैं और त्याग के बारे में सोच भी नहीं सकते। परन्तु वस्तुत: त्याग ही एकमात्र नियम है। यदि कोई सोचता है कि वह इसके अतिरिक्त कुछ कर रहा है, तो यह उसका भ्रम मात्र है। हम सभी इस महान ऊर्जाराशि को उन्मुक्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इसका एकमात्र तात्पर्य यही है कि हम लोग यथासाध्य शीघ्रतापूर्वक मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जो बलवान अंग्रेज आज पूरी पृथ्वी का मालिक होने की इच्छा कर रहा है, वही वस्तुत: मृत्यु की ओर जाने के लिए सर्वाधिक संघर्ष कर रहा है। आत्मरक्षा का प्रयास भी त्याग की ही एक प्रणाली है। जीने की इच्छा भी मृत्यु से प्रेम की ही एक प्रणाली है।'' ...

बृहस्पतिवार की रात को स्वामीजी पवित्रता के विषय में बोलने लगे कि किस प्रकार इसका अभ्यास तथा संचार करना होगा। जब यह विषय गम्भीर से गम्भीरतर स्तर तक पहुँचता जा रहा था, तभी मैंने बुद्धूपना करके इस प्रसंग का क्रम भंग कर दिया। बाद में जब सभी चले गये, तो मैं अकेले ही उनके साथ रह गयी। मैं ऐसी किसी भी बात पर पश्चात्ताप नहीं करती, क्योंकि मेरा निश्चित विश्वास है कि यह प्रसंग फिर उठेगा और उस समय यदि मैं न भी रहूँ, तो कोई दूसरा उसे प्राप्त करेगा – विलम्बित होने के कारण वह महत्तर रूप में प्रकट होगा। उस विषय पर उनका अन्तिम वाक्य था, ''ब्रह्मचर्य प्रत्येक धमनी में ईश्वराग्नि के समान प्रज्वलित रहना चाहिये।''

पिछली रात, बृहस्पतिवार को, वे थोड़ी देर तक सिक्खों तथा उनके दस गुरुओं के बारे में बातें करते रहे और उन्होंने ग्रन्थ साहब से हमें गुरु नानक के जीवन की एक घटना बताई। उन दिनों वे मक्का गए हुए थे और वहाँ के काबा मस्जिद की ओर पाँव फैलाए लेटे थे। ईश्वर के स्थान की ओर पाँव किए देखकर क्रुद्ध मुसलमान उन्हें जगाने और जरूरत हुई तो मार डालने के लिए उनके पास आए। वे चुपचाप उठे और सहज भाव से बोले, ''तो फिर मुझे वह स्थान दिखा दो, जहाँ ईश्वर नहीं हैं, ताकि मैं अपने पाँव उधर ही कर सकूँ।'' उनका यह मृदु उत्तर ही काफी था। बहुत-से लोगों ने उनका मत स्वीकार कर लिया। ...

एक विचित्र बात मैंने अपने हृदय में तुम्हें बताने के लिये सुरक्षित रख छोड़ी है। किसी ने ओलिया के समक्ष मेरी निन्दा करते हुए कहा कि स्वामीजी के बोलते समय मैं उन्हीं की ओर देखती रहती हूँ। यथासमय यह बात मेरे कानों में आयी। अत: इसके बाद उनके बोलते समय मुझे उसकी याद आयी और मैंने दूसरी ओर देखने का प्रयास किया। तब मेरी समझ में आया कि मैं क्यों श्रीमती जॉनसन की दृष्टि से बचना चाहती हूँ। स्वामीजी के अतिरिक्त अन्य किसी के भी चेहरे की ओर देखने पर एक बाधा का अनुभव होता है और उससे दृष्टि को हटाकर कमरे के दरवाजे की ओर दृष्टि फिरा लेनी पड़ती है; और यदि स्वामीजी की ओर देखा जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो दृष्टि उस उन्मुक्त द्वार से होकर सीधे अनन्त तक चली जाती है। ऐसा क्यों है? क्या इसलिये कि वे अपने विषय में जरा भी सचेत नहीं हैं?

४ नवम्बर, मिस मैक्लाउड को

मुझे बता देना चाहिये था, परन्तु मैं भूल गयी थी – किस प्रकार वे पहले के समान संसार से छुटकारा पाने की बातें कह रहे थे। वे जीवन भर धन-मान के प्रति घृणा का स्तोत्र बोलते रहे हैं, परन्तु अब उन्होंने इसका सच्चा तात्पर्य समझना आरम्भ कर दिया है। अब यह उनके लिये असह्य हो उठा है। मेरी ओर उन्मुख होकर वे सहसा बोल उठे, ''मैं इस समय कहाँ हूँ!'' उनके चेहरे पर सब कुछ खो बैठने की वह भयंकर शून्य दृष्टि थी! इसके बाद वे बड़बड़ाते हुए कहने लगे, ''रामकृष्ण, तुम्हारे ही लिये – (थोड़ा ठहर कर) मैं समर्पित होता हूँ। क्योंकि एकमात्र तुम्हारे चरण ही मनुष्यों के लिये आश्रय हैं।'' अद्भुत क्षण था! प्रिय युम, मैं वहाँ तुम्हारी उपस्थिति के लिये तरस रही थी।

शेष भाग पृष्ठ २०६ पर

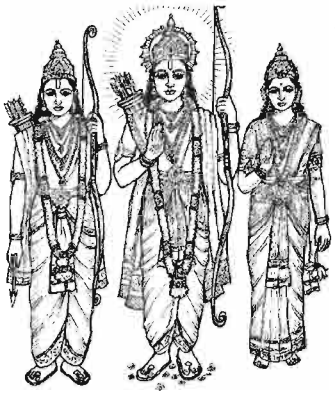

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (६/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

यह कैसे निर्णय कर लिया तुमने कि लंका जलानेवाला बन्दर सबसे कम बलवाला है?

महाराज, सारे बन्दर गरज रहे थे –

गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका।

मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका।। ५/५४/८

जो वीर थे, वे गरज रहे थे और जो लंका जलाकर गया है, वह चरणों में बैठकर आँसू बहा रहा था। तब मैं समझ गया कि जो वीर हैं, वे गरज रहे हैं और डरपोक आँसू बहा रहा है। बेचारे लंकावालों का मापदण्ड तो यही हो सकता था। इस तरह से हनुमानजी ने प्रभु के अतुलित प्रताप का परिचय दिया। उन्होंने वस्तुओं का संयोजन किया, उपयोग किया। इस प्रकार संत बदल करके, वस्तुओं का उलट-फेर करके उसका सदुपयोग कर लेते हैं।

हनुमानजी ने बदलकर ऐसी अद्भुत स्थिति उत्पन्न कर दी कि जीव में कितनी निर्भयता आ गई! जो रावण से डरा करता था, वह आज रावण का परित्याग करके दिन में और भरी सभा में यह घोषणा कर देता है –

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।।

मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि।। ५/४१

विभीषण वैसा कहकर निश्चिन्त भाव से 'नभ पथ गयउ' आकाश मार्ग से गये। इसका तात्त्विक तात्पर्य यह है कि ऐसा भी तो हो सकता है कि श्रीराम समुद्र को पार करके जब लंका में आ जाते, तब विभीषण भगवान राम की शरण में जाते। ऐसा क्यों नहीं हुआ? भगवान राम समुद्र के उस पार हैं, तब विभीषण उनकी शरण में गये। यह आध्यात्मिक साधना का सूत्र बड़े महत्त्व का सूत्र है। शरणागति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति समुद्र को पार करे। समुद्र मानो देहाभिमान का समुद्र है। जब तक कोई साधक देहाभिमान में बैठा हुआ है, देह को ही आत्मा मान बैठा है, देह ही उसके धर्म का केन्द्र है, देह ही उसकी चिन्तन का केन्द्र है, देह ही उसकी सेवा का केन्द्र है, तब तक वह शरणागति ग्रहण कर ही नहीं सकता। उसके लिये आवश्यक है कि वह उस देहाभिमान को पार करे। प्रभु तो बड़े कौतुकी हैं। मानो संकेत यह है कि अयोध्या से यहाँ तक मैं आ गया, अब लंका से यहाँ तक तुम भी तो आओ। भगवान श्रीकृष्ण ने तो कह दिया –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान्स्तथैव भजाम्यहम्।

जो मुझे जिस भाव से चाहता है, मैं भी उसी भाव से उसका भजन करता हूँ। एक महात्मा से किसी ने कहा – महाराज, तब तो बड़ा संकट है। हम एक पग चलेंगे, तो वे भी एक पग चलेंगे, तब कब मिलना होगा? तो उन्होंने कहा कि घबराओं नहीं, तुम एक पग चलोगे, तो वे भी एक पग चलेंगे, पर उनका एक पग कितना बड़ा है, उनका एक पग कितना लम्बा है, इस पर तो विचार करो। जब वे एक पग बढ़ायेंगे, तो तुम्हारे पास ही पहुँच जाएँगे। इसकी चिन्ता मत करो। प्रभु ने अयोध्या से लेकर लंका तक की यात्रा किसके लिये की है? केवल जीव के लिए। जीव की रक्षा के लिये, जीव के कल्याण के लिये। भगवान जब यहाँ तक आते हैं, तो वे जीव को संकेत करते हैं कि देह से ऊपर उठो। साधना करते हुये भी देह में मत बैठे रहो। इसका अनुभव तो कथा में भी बहुत-से लोग करते होंगे। कथा में बैठकर भी नहीं सुन पा रहे हैं, तो देह में बैठने के कारण ही तो नहीं सुन पा रहे होंगे। नींद आ गई माने? देह में समा गये। आप संसार में भी कोई सांसारिक कार्य करेंगे, तो थोड़ी देर के लिए देह से अलग होना पड़ेगा। पर जब हम भगवान को पाना चाहेंगे, तो उस देह की भावना से तो मुक्त होना ही पड़ेगा, देहाभिमान से मुक्त होना ही पड़ेगा।

कैकेयीजी और सुमित्राजी में यही अन्तर है। कैकेयीजी का प्रेम सिद्ध नहीं हुआ और सुमित्राजी का प्रेम समय की कसौटी पर खरा सिद्ध हुआ, तो इसका मात्र कारण यह है

कि कैकेयीजी देहाभिमान के समुद्र को पार नहीं कर पाईं। वह समुद्र भौतिक अर्थों में ही नहीं है। उसका कुछ अभिप्राय है। कैकेयीजी यही कहती हैं कि श्रीराम तो मुझे भरत से अधिक प्रिय हैं। पर जब मंथरा पूछती है कि क्यों प्रिय हैं, तो वे यही कहती हैं कि राम सभी माताओं को समान रूप से चाहते हैं, पर मुझे सबसे अधिक चाहते हैं। कैसे पता चला? बोली, मैंने परीक्षा लेकर देखा है। आप क्या चाहती हैं? बोली, मैं ब्रह्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि अगले जन्म में राम मेरा पुत्र बने। मंथरा ने कहा कि आपकी बात तो परस्पर विरोधी है। श्रीराम का जन्म कौशल्याजी से हुआ और आप स्वयं कह रही हैं कि राम अपनी माता से अधिक मुझे चाहते हैं। तब तो आप बड़े घाटे में रहेंगी। अगले जन्म में कहीं वे आपके गर्भ से उत्पन्न हुए और कहीं आपकी अपेक्षा अपनी सौतली माँ को चाहने लगे, तब तो आप जिस लाभ में है, उससे वंचित रहेंगी। तब कैकेयी ने कहा कि मंथरा, जो भी हो, समस्या यह है कि राम को मैं जितना भी चाहूँ, राम मुझे चाहे जितना भी सम्मान दे, पर राम का परिचय जब भी दिया जाएगा, कौशल्या का बेटा कहकर दिया जायगा, मेरा बेटा तो नहीं कहा जायेगा। बेटा तो उसका तब है, जब शरीर से जन्म ले। यही कैकेयी का दुर्भाग्य था। उन्होंने शरीर का नाता असली नाता मान लिया और अभी का नाता नकली। यह देह की जो विडम्बना है, उसी भावना से सुमित्राजी मुक्त हैं। जब वे अपने पुत्र से कह देती हैं –

तात तुम्हारि मातु बैदेही। २/७३/२

हे लक्ष्मण, तुम्हारी माँ तो श्रीजानकीजी हैं। उन्होंने शरीर को केन्द्र नहीं माना कि लक्ष्मण मेरा पुत्र है। यहाँ कितना सुन्दर है दर्शन! जब उन्होंने कहा कि तुम्हारी माँ तो सीता है, वैदेही है, इसके साथ-साथ जब यह कह दिया कि तुम जैसा पुत्र पाकर मैं धन्य हो गई, तो लक्ष्मणजी चकित हो गये कि एक ओर तो माँ यह कह रही हैं कि तुम वैदेही के पुत्र हो और दूसरी ओर कह रही हैं कि तुम जैसा पुत्र पाकर मैं धन्य हो गई। एक ओर यह कहना कि तुम मेरे पुत्र हो और दूसरी ओर यह कहना कि तुम वैदेही के पुत्र हो। दूसरी ओर कह रही हैं कि तुम जैसा पुत्र पाकर मैं धन्य हो गई। इसमें साधना का तत्त्व क्या है? नाते का सूत्र क्या है? जिस उपासना की व्याख्या सुमित्रा अम्बा ने की, वह व्याख्या यह है, श्रीलक्ष्मणजी को उपदेश देने का तात्पर्य यह है कि लक्ष्मण, अगर तुम मुझे माता समझते हुए वन में जाओगे और यह सोचोगे कि मैं माँ को छोड़ आया हुआ हूँ, तो राम की सेवा में रहते हुए भी तुम्हें त्याग का अभिमान होगा, मेरा स्मरण होगा, परिवार का स्मरण होगा। इसलिये तुमने अगर देह के नाते को महत्त्व दिया, तो तुम्हारी साधना समाप्त हो जायेगी। जब मैं यह मानूँगी कि लक्ष्मण मेरा पुत्र है, जो राम की सेवा में है, तो तुम्हारे नाते से राम की याद आयेगी। इसलिए मेरा मानना ठीक और तुम्हारा मानना बिलकुल ठीक नहीं है। उन्होंने सूत्र दे दिया –

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें।
सब मानिअहिं राम के नातें।। २/७३/७

जिस मान्यता से, नाते से हमारी ईश्वर से प्रीति दृढ़ हो, ईश्वर की स्मृति हो, वही नाता ठीक है। उन्होंने बहुत बढ़िया दृष्टान्त दिया। वे कहती हैं कि यदि कोई देवता को दूध अर्पित करना चाहे और किसी पात्र में दूध भरकर उसे देवता को अर्पित करे, तो उस दूध को उस बर्तन ने जन्म थोड़े ही दिया है। दूध तो गाय का है और पीनेवाला दूध को पीना चाहता है। लेकिन कितना बड़ा सौभाग्य उस बर्तन का कि जिस बर्तन में वह दूध आया और पीनेवाला उस बर्तन को होठ से लगाएगा, तो बर्तन को होठ का स्पर्श तो मिल ही जाएगा। इसी प्रकार से लक्ष्मण मैं तो बर्तन हूँ। मैं तो पात्र हूँ। लोग यह कहते हैं कि यह सुमित्रा का बेटा है –

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ।। २/७४

इसका अभिप्राय यह है कि अगर देह को केन्द्र बनाकर व्यक्ति साधना में प्रवृत्त होगा, तो उसकी साधना तो सर्वदा अधूरी ही होगी, इसलिये उसे इस देह की आसक्ति से क्रमशः मुक्त होना होगा, देह से ऊपर उठना होगा।

यही संकेत विभीषण के लिये था। विभीषण रावण को देह के नाते अपना भाई मानते हैं। समुद्र पार करने का अर्थ है – देह से ऊपर उठ जाना। इसलिए उधर से हनुमानजी जब समुद्र पार करके लंका में आए थे, जगज्जननी श्रीसीताजी का आशीर्वाद पाकर धन्य हुए। विभीषण को भी भगवान राम की शरण में जाने के लिए समुद्र को, उस देह के नाते को, देह के सम्बन्ध को पार करना पड़ा। वे उन सबसे मुक्त होकर भगवान की शरण में चले गये। जब भगवान की शरण में चले, तो चलते हुए उनमें चिन्तन जो हो रहा है, वह महत्त्वपूर्ण है। चरण किधर जा रहे हैं, महत्त्व केवल उसका ही नहीं हैं, चरण के साथ-साथ हमारी दृष्टि कहाँ है? हमारा

मन कहाँ है, हमारा चिन्तन कहाँ है, यह महत्त्वपूर्ण है। कोई व्यक्ति मन्दिर में जा रहा हो अथवा किसी अच्छे स्थान जा रहा हो, किन्तु उसका चिन्तन यदि अपवित्र हो, तो स्वाभाविक रूप से उसकी स्थिति ठीक वहीं, अपवित्र स्थान पर ही है। इसके अलावा कोई व्यक्ति जब किसी पवित्र स्थान पर जाता है, तभी उसका दर्शन कर सकता है, किन्तु चिन्तन अथवा ध्यान का फल यह है कि जिसका ध्यान कर रहा है, वह हर क्षण उसी स्मृति में डूबा हुआ है, उसी स्मृति में तदाकार है, यही उसके लिए हर क्षण का उपयोग है। वह केवल भविष्य में ही दर्शन नहीं करेगा, बल्कि जब वह भगवान का शील, भगवान का गुण, भगवान का रूप – इनका जब चिन्तन करेगा, भगवान का ध्यान करेगा, ध्यान करते हुए चलेगा, तो स्वाभाविक रूप से उसके अन्त:करण में भगवान की ही स्मृति होगी।

यही परीक्षा थी विभीषण की। ठीक है, विभीषण रावण को छोड़कर आ गये, राक्षसों को छोड़कर आ गये, पर यह भी तो हो सकता था कि यह चिन्तन करते हुए चलें कि रावण कैसा दुष्ट है! वह कैसा दुष्ट है! उनको जब छोड़ा, तब तो उनमें दोष देखकर ही छोड़ा, पर बाद में उनके दोषों का चिन्तन करना, यह तो मानो ऐसे है कि शरीर से तो लंका छोड़कर जा रहे हैं और मन से लंका में ही हैं। इसीलिए संकेत आता है न! कि प्रभु अयोध्या छोड़कर वन में जाने लगे, तो अयोध्यापुरवासी भी उनके साथ अपने घरों को, अपनी सारी वस्तुओं को छोड़कर चल पड़े। भगवान राम उन्हें समझाते हैं, पर उन लोगों ने कहा, नहीं नहीं, महाराज! हम तो आपके साथ चलेंगे ही। लिखा हुआ है कि वे लोग दिन भर चले, और जब रात्रि हुई तो –

लोग सोग श्रम बस गए सोई।
कछुक देवमायाँ मति मोई।।
जबहिं जाम जुग जामिनि बीती।।
राम सचिव मन कहेउ सप्रीती।।
खोज मारि रथु हाँकहु ताता।
आन उपायँ बनिहिं नहिं बाता।। २/८४/६-८

लोग थकान के मारे सो गये। अब वे लोग भगवान राम के साथ जा रहे थे, पर भगवान राम सोते हुए छोड़कर चले गये। यह कैसी बात है! भगवान का स्वभाव तो किसी को छोड़ने का है नहीं कि वे किसी को छोड़ दें? यह तो जीव का स्वभाव हो सकता है, ईश्वर का नहीं। पर संकेत क्या था? वे जो भगवान राम के साथ चल रहे थे, वे सो क्यों गये? कोई बहुत थक जाता है, तो नींद आ जाती है। तो उनको भगवान राम ने सत्य का दर्शन करा दिया। क्या? दो वृत्ति लेकर चले रहे थे। सब कैकेयी की निन्दा करते चल रहे थे कि कैकेयी कितनी दुष्ट हैं! कितना उनका अन्त:करण अपवित्र है! उन्होंने श्रीराम को इतना कष्ट दिया! और साथ-साथ यह भी चिन्तन कर रहे थे कि हमलोग श्रीराम से कितना प्रेम करते हैं! हम लोग उनके साथ सब कुछ छोड़कर जा रहे हैं! प्रभु का अभिप्राय मानो यह था कि अगर तुम इस समय भी कैकेयी के दोषों का ही चिन्तन कर रहे हो और अपने त्याग के अभिमान में ही हो, तब तुम मेरे पास, मेरे साथ कहाँ हो? मानो बहुत बड़ा व्यंग्य था कि तुम लोगों ने सोचा कि इतनी कोमल शय्या और पलंग को हमलोगों ने छोड़ दिया। नींद को तो साथ लेकर आ गये और तुम्हें लगता है कि हमने छोड़ दिया। क्या छोड़ दिया भाई? छोड़ने की वस्तु नींद है, छोड़ने की वस्तु पलंग और शय्या नहीं है। ब्रह्मचारीजी यदि सुन लें कि पलंग पर नहीं, तख्ते पर सोना चाहिए और यदि तख्ते पर बाईस घंटे सोते रहें, तो वह केवल एक नियम का पीटना हुआ। भई, तख्ता माने मनुष्य को अधिक आलस्य और आराम की वृत्ति न आवे। पर वह समझ में उन्हें आ गया, जो नहीं सोये वे लक्ष्मण थे। सुमन्त जी ने कहा कि महाराज, आप चले जाएंगे, तो रथ पर बैठकर ही तो जाएंगे। रथ के पहिए का निशान जो बनेगा, उसे तो जगने पर लोग देख लेंगे कि इधर रथ गया है। भगवान राम ने कितनी सुन्दर बात कही। प्रभु ने बड़ा सुन्दर संकेत किया। जो भगवान के साथ नहीं चलते हैं, वे उनके रथ के पहिए के निशान के साथ भी चल सकते हैं। प्रभु ने कहा –

खोज मारि रथु हाँकहु ताता। २/८४/८

ऐसा चक्करदार रथ चलाओ, ईश्वर का रथ बड़ा चक्करदार चलने वाला है। वह एक तरह से नहीं चलता। वह इतनी दिशाओं में किधर चलता है, कैसे चलता है, उसे ढूँढ़ पाना सम्भव नहीं है।

कितनी बड़ी दया थी! ये ही अयोध्यावासी भगवान राम के पास पहुँचे और भगवान राम से मिलकर धन्य हो गये। कब? जब भरतजी के साथ गए। दोनों में क्या अन्तर था? गोस्वामीजी ने सूत्र दिया। श्रीभरत के भाषण को जब अयोध्यावासियों ने सुना कि अयोध्या में इतना अनर्थ देह के कारण ही हुआ। कैसे? महाराज दशरथ में अगर देह के प्रति आसक्ति न होती, काम की वृत्ति न होती, अगर

महारानी कैकेयी ने देह के प्रति महत्त्वबुद्धि न की होती कि मेरा पुत्र भरत है, तो यह अनर्थ न होता। भरत ने क्या किया? श्रीभरत जी ने सूत्र दिया। श्रीभरत की बात सुनते ही गोस्वामीजी कहते हैं –

सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए।। २/१७५/९

अगर श्रीभरत चाहते, तो उनको याद आ जाती कि कैकेयी उनकी माँ हैं, पर स्वयं वे देह की भावना से तो ऊपर हैं ही, पर उतना होते हुए भी उनकी बात जिसने सुनी, वह देह भावना से मुक्त हो गया। कहते हैं –

सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की।।
२/१७५/१०

श्रीभरतजी ने कहा –

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।। २/१८२

भरतजी ने यह घोषणा कर दी –

एकहिं आँक इहइ मन माहीं।
प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं।। २/१८२/२

प्रात:काल हम प्रभु के पास चलेंगे। ज्यों ही यह घोषणा हुई,

चलत प्रात लखि निरनउ नीके। २/१८४/२

अन्तर यही था, एक प्रात:काल वह था, जो महाराज दशरथ के संकल्प में था, कल प्रात:काल राम को राज्य देंगे और एक प्रात:काल वह था, जिसके लिए श्रीभरत ने कहा, कल प्रात:काल प्रभु के पास चलेंगे। पर अन्तर था। वह प्रात:काल दशरथ के जीवन में नहीं आया, क्योंकि वह रात्रि बीच में थी, जिसमें देह भावना लेकर दशरथ जी कैकेयी के महल में गये और उस देह भावना ने श्रीराम को दूर कर दिया। पर धन्य हैं भरत, जब उन्होंने कहा कि प्रात:काल चलेंगे, तो वह रात कितनी विलक्षण बीती! कितना अन्तर है आज की रात में और तब की रात में? अयोध्यावासी जिस समय भरत के श्रीराम से मिलने जाने की बात सुनते हैं –

चलत प्रात लखि निरनउ नीके।
भरतु प्रानप्रिय भे सबही के।।
मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई।
चले सकल घर बिदा कराई।। २/१८४/२-३

तब अयोध्यावासी अपने-अपने घर में अपने पलंग पर लेट नहीं गये, सो नहीं गये, चलने की तैयारी करने लगे –

जागत सब निसि भयउ बिहाना। २/१८६/२

सारी रात जगकर बीत गई। प्रात:काल होते ही श्रीराम के पास चलना है, श्रीराम से मिलना है। श्रीराम के साथ जा रहे थे, तो कैकेयी की याद आ रही थी। आज श्रीराम की याद आ रही है। श्रीभरत के साथ चलेंगे, श्रीराम का दर्शन होगा, यह स्थिति आ गई। निद्रा का कहीं लेश नहीं है, पलंग है पर नींद नहीं है। जब वे प्रात:काल चल रहे हैं, तब भी श्रीराम की स्मृति और जब पहुँच गये, तब तो श्रीराम से मिलकर धन्य हो गये। यही श्रीविभीषण की स्थिति है। देहाभिमान से अलग होकर उन्होंने लंका की स्मृति को भुला दिया। अब क्या स्मृति आ रही है?

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषि नारी। ५/४१/५-६

आज विभीषणजी को या तो भगवान के चरणों की याद आ रही है, या भगवान के चरणों से जिन भक्तों ने दिव्य कल्याण प्राप्त किया, आनन्द प्राप्त किया, सुख प्राप्त किया, धन्यता प्राप्त की, उनके चिन्तन में वे डूबे हुए चले जा रहे हैं। **(क्रमश:)**

पृष्ठ २०२ का शेष भाग

"यह शरीर जा रहा है। यह घोर तपस्या करते हुए जायेगा। मैं प्रतिदिन उपवास करते हुए १०,००० ओंकार का जप करूँगा। गंगाजी के तट पर अकेला रहूँगा। हिमालय में – 'हर-हर' – 'मुक्त-मुक्त' – पुकारूँगा। एक बार फिर मैं अपना नाम बदल डालूँगा; और इस बार मुझे कोई भी नहीं जान सकेगा। मैं एक बार फिर संन्यास की दीक्षा लूँगा – और वह इसलिये होगा कि मैं फिर कभी भी, किसी के लिये भी लौटकर नहीं आऊँगा।"

इसके बाद उनकी वही खोयी हुई दृष्टि; और भयंकर चिन्ता – कि वे ध्यान करने की शक्ति को खो बैठे हैं। "तुम म्लेच्छ लोगों के लिये मैं सब कुछ – सब कुछ खो चुका हूँ।" और फिर एक मुस्कुराहट और एक दीर्घ नि:श्वास के बाद प्रस्थान। **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (५)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी माधवानन्दजी महाराज रामकृष्ण संघ के संघगुरु पद पर आसीन हुए । उन्होंने मंत्रदीक्षा देना आरम्भ किया। महाराज का रंगून में खींचा हुआ एक पुराना फोटो हमें प्राप्त हुआ था । उसे ही उनके मंत्रदीक्षित शिष्यों को विक्रय किया जाता था। महाराज के साथ मैं नि:संकोचपूर्वक बातें करता था। एक दिन मैंने उनसे कहा कि आपका एक नया फोटो खींचना है, मैं कलकत्ता से एक फोटोग्राफर साथ लेकर आऊँगा। पहले तो वे फोटो खिंचाने के लिए राजी नहीं हुए, किन्तु उनके प्रधान सेवक ने जब अनुरोध किया, तो उन्होंने अनिच्छापूर्वक सहमति दे दी। वे प्रचार और आडम्बर के विमुख थे। एक दिन शाम को फोटोग्राफर को साथ लेकर मैं बेलूड़ मठ आया। मुझे अच्छी तरह याद है कि किस प्रकार नि:स्पृह भाव से उन्होंने अपनी आधी बाहों वाला कोट उतारकर गेरुआ रंग का कुर्ता और चादर पहनी और कमरे की दक्षिण दिशा के बरामदे में एक आसन पर बैठे। दुर्भाग्यवश फोटो खींचते समय भाग्य ने हमारा साथ नहीं दिया। हुआ यह कि उनके चश्मे का काँच मोटा था, जिसके कारण उनकी आँखों पर प्रकाश की चमक आ रही थी ।

स्वामी माधवानन्द

बाद में एक और फोटोग्राफर को साथ लेकर मैं बेलूड़ मठ गया। इस बार हम बगैर काँच वाला चश्मे का फ्रेम ले गए थे। श्रीरामकृष्ण देव जिस प्रकार पालथी मारकर बैठते थे, महाराज भी उसी प्रकार एक आसन पर बैठ गए। उनके दायें पैर के चरण उनके बायें घुटने के नीचे थे, इसलिए उनके दोनों चरण दिखाई नहीं दे रहे थे। उनके दोनों चरण जैसे दीख सकें, उस प्रकार जब मैंने उन्हें बैठने का अनुरोध किया, तो उन्होंने मुझे थोड़ी झिड़की दी और उसके बाद तदनुसार बैठ गए। मैंने सावधानीपूर्वक उनकी चादर ठीक कर दी, जिससे उनके दीक्षित भक्त फोटो में अपने गुरुदेव के चरणयुगल स्पर्श कर सकें। मैंने जब उन्हें बगैर काँच वाला चश्मे का फ्रेम पहनने को दिया, तो उन्होंने अस्वीकार करते हुए कहा, It will be unnatural – ऐसा करना बनावटी होगा। तब मैंने उन्हें चश्मा निकालने के लिए विनती की, क्योंकि उनकी दोनों आँखें दीख नहीं रही थीं। मैं इसलिए ऐसा कर रहा था कि उनके शिष्यगण फोटो में उनकी दोनों आँखें देख सकें। मैंने उनसे जैसे कहा, वे अनिच्छापूर्वक करने के लिए सहमत हुए। फोटोग्राफर ने उन्हें चश्मे का फ्रेम पहनाया और फोटो खींचा। उन सब फोटो के नेगेटिव और प्रिन्ट अभी भी अद्वैत आश्रम में हैं।

संघ में सम्मिलित होने के बाद मैंने स्वामी माधवानन्द जी के सम्बन्ध में अनेक साधुओं से सुन्दर घटनाएँ सुनी हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में वे एकान्तप्रेमी थे, और सर्वोपरि अयाचित उपदेश देना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। एक कहावत है, Brevity is the soul of wit – 'अल्प-वाणी बुद्धिमत्ता का परिचायक है।' किसी के प्रश्न पूछने पर वे एक-दो वाक्यों में उसका उत्तर देते थे। हम उनसे कुछ सुनने के लिए हमेशा उत्सुक रहते थे।

१९६२ में ब्रह्मचर्य-व्रत में नवदीक्षित ब्रह्मचारियों को स्वामी माधवानन्द जी ने संक्षेप में कुछ बातें कही थीं। मेरे एक सहपाठी संन्यासी ने उन्हें अपनी दैनन्दिनी में लिख रखा था, जिन्हें मैंने अपनी दैनन्दिनी में लिखा था। यहाँ उनका उल्लेख करता हूँ :

१) जिससे जितना सम्भव हो, वह संघ की सेवा करे। हमेशा अपना (Contribution) योगदान देने का प्रयत्न करना चाहिए।

२) जहाँ अपने स्वार्थ और संघ के कल्याण के बीच द्वन्द्व उत्पन्न हो, वहाँ अपने स्वार्थ का त्याग करना ही उचित है। इससे अपना और संघ – दोनों का कल्याण होगा। भले ही हमारा अहंकार पूर्ण रूप से न जाए, किन्तु ऐसा करने से बहुत नष्ट हो जाता है।

३) परस्पर प्रेमपूर्ण सम्बन्ध होना चाहिए। यह भाव हमें

स्वामीजी देकर गए थे और यह नितान्त आवश्यक है कि हम इसका पालन और अनुसरण करें। अपनी दोष-त्रुटियों की उपेक्षा कर अच्छे गुण ही देखने चाहिए। नकारात्मक पक्ष को न देखकर सकारात्मक को ग्रहण करना चाहिए। यही कल्याणकर है। ग्लास 'आधा भरा' और 'आधा खाली' में से 'आधा भरा' वाला भाव ही ग्रहण करना चाहिए।

४) प्रत्येक कार्य दायित्वपूर्ण और महत्त्वपूर्ण होता है। कार्य में छोटा-बड़ा भेद नहीं होता। घड़ी का छोटा पुर्जा और बड़ा पुर्जा – दोनों की समान आवश्यकता होती है। दोनों के ऊपर ही घड़ी का समय निर्भर करता है। उसी प्रकार हमारे इस संघ का प्रत्येक अंश समान भाव से महत्त्वपूर्ण है।

५) सुविधाएँ मनुष्य को बड़ा नहीं करतीं । मनुष्य का जीवन ही मनुष्य को बड़ा करता है। इसलिए सुविधाओं पर अधिक ध्यान न देना चाहिए। यदि सुविधाएँ सहज उपलब्ध हैं, तो ग्रहण कर सकते हैं, नहीं तो दुख की कोई बात नहीं है। वर्तमान दिनों की तुलना में मठ के शुरुआती दिनों में सुख-साधन बहुत ही कम थे। हमारा आदर्श है – सादा जीवन उच्च विचार।

६) स्वामीजी ने कहा है, कर्म ही पूजा है। यह बात अब बहुत सुनने में नहीं आती। कार्य करते समय यह सोचना चाहिए कि ठाकुर की सेवा कर रहा हूँ। अच्छी तरह काम करने से जप-ध्यान भी अच्छा होगा।

७) जप-ध्यान, कर्म, स्वाध्याय और स्वास्थ्य-रक्षा यह सब एक साथ करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस समन्वय द्वारा सुन्दर और उत्तम फल की प्राप्ति होती है और चरित्र का विकास होता है।

८) हमारे जीवन में कोई क्षुद्र भोगवासना, सत्ताप्राप्ति, नाम-यश प्राप्ति इत्यादि नहीं हैं। ईश्वर-साक्षात्कार ही हमारा परम आदर्श और उद्देश्य है। इसलिए खूब आन्तरिकता और यत्नपूर्वक ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। हम जितना समय साधन-**भजन** करेंगे, उतना समय वह निष्ठा और दृढ़तापूर्वक होनी चाहिए। उनका दर्शन उनकी कृपा पर ही निर्भर है। अन्तिम समय में वे निश्चय कृपा करेंगे – यह सत्य है।

९) कोई **आश्चर्यमय** कार्य करना हमारा उद्देश्य नहीं, चमकना-दमकना भी उद्देश्य नहीं है। यथाशक्ति जिम्मेदारी के साथ संघ की सेवा करना ही वास्तविक कार्य होता है। उसी में हमारे गृहत्याग और संन्यास जीवन की सार्थकता है और समाज का भी कल्याण है।

१०) अन्यान्य धर्मसम्प्रदायों में दो-चार महापुरुष होते हैं, किन्तु हमारे संघ में स्वयं ईश्वर – ठाकुर हैं। इसीलिए हम धन्य हैं। उन्होंने ही कृपापूर्वक हमें अपने पास लाया है, अन्यथा संन्यासी जीवन सहज नहीं, किन्तु दुर्लभ है।

११) परम लक्ष्य की प्राप्ति दो-चार दिन में नहीं होती। दीर्घकाल, निरन्तरतापूर्वक और निष्ठापूर्वक (साधन-भजन) करना होगा, तभी सिद्धि-प्राप्ति होगी।

जब भी स्वामी माधवानन्द जी महाराज की कोई रचना अथवा उनसे सम्बन्धित कोई लेख देखता हूँ, तो उसे मनोयोग से पढ़ता हूँ। १९५६ में स्वामी माधवानन्द जी अमेरिका स्थित सेन्टा बार्बरा मन्दिर के लोकार्पण के लिए आए थे। इस उपलक्ष्य पर उन्होंने एक व्याख्यान दिया था। १२ फरवरी, १९५६ में हॉलीवुड मन्दिर में उनका व्याख्यान 'वेदान्त एण्ड द वेस्ट' अंग्रेजी पत्रिका के जनवरी, १९५९ (अंक १३५) में 'विवेकानन्द एण्ड हिस मैसेज' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इस लेख का मैंने बंगाली में अनुवाद किया और वह 'उद्बोधन' पत्रिका १३६८, माघ में प्रकाशित हुआ।

१९७५ में मैं जब हॉलीवुड में था, उस समय 'उद्बोधन' पत्रिका के ७६वें वर्ष के दशम अंक में स्वामी निरामयानन्द जी द्वारा स्वामी माधवानन्द जी के विषय में एक हृदयस्पर्शी लेख मुझे प्राप्त हुआ। लेख के द्वारा कर्मयोग के गूढ़ सिद्धान्तों के समझने में मुझे सहायता प्राप्त हुई। उस लेख को तुरन्त अंग्रेजी में अनुवाद कर मैंने 'प्रबुद्ध भारत' के सम्पादक के पास भेजा और वह नवम्बर, १९७५ के अंक में 'Work or Worship' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

१९६४ में जब मैं बेलूड़ मठ स्थित ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में था, तब स्वामी माधवानन्द जी महाराज से मैंने एक साक्षात्कार लिया था। उन्होंने उस समय आध्यात्मिक जीवन की कुछ गूढ़ बातें मुझे बताई थीं। जैसे कि, चंचल मन को किस प्रकार नियन्त्रित करना और मन को किस प्रकार अन्तर्मुख करना इत्यादि।

एक बार महाराज जब मसहरी के भीतर बिस्तर पर ध्यान कर रहे थे, तब एक दुर्घटना घटी। ध्यान के बाद जब उन्होंने नीचे होकर प्रणाम किया, तभी अनजाने में वे बिस्तर से जमीन पर गिर पड़े । अपने आसपास के स्थान के बारे में तब वे पूरी तरह सचेत नहीं थे। उनकी जाँघ की

शेष भाग पृष्ठ २२५ पर

सेवा के विभिन्न आयाम

स्वामी ओजोमयानन्द
रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

'अहंकार अति दुखद डमरूआ'[१] अर्थात् अहंकार अत्यन्त दुख देनेवाला डमरू (गाँठ का रोग) है। अहंकार हमारी प्रगति में बाधक होता है। वास्तव में जब तक किसी के मन में अहंकार है, तब तक वह सेवा कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसका अहंकार प्रत्येक क्षण उसे सेवा में बाधा ही देता रहेगा। सेवा वैसे नहीं की जाती जैसी हमारी स्वयं की इच्छा होती है, बल्कि सेव्य की इच्छानुसार सेवा करना ही श्रेष्ठ सेवा होती है। जब हम सेव्य, जिसकी सेवा की जा रही हो, के इच्छानुरूप सेवा करते हैं, तब हमारे अहंकार पर चोट लगने लगती है और हमारे अहंकार का नाश होता है। जो पीड़ित अवस्था में हो, वृद्ध हो, रोगी हो उसका तो क्रोधित होना या चिड़चिड़ाना स्वाभाविक होता है, पर ऐसी स्थिति में सेवा करनेवाले को उस क्रोध व चिड़चिड़ेपन की उपेक्षा करते हुए तथा अपने अहंकार का नाश करते हुए सेवा करनी पड़ती है। **'संत सहहिं दुख परहित लागी।'**[२] अर्थात् संत दूसरों की भलाई के लिये दुख सहते हैं। इस प्रकार सेवा से हमारे अहंकार का नाश होता है और हमारे व्यक्तित्व का विकास होता है, क्योंकि अहंकार का नाश हुए बिना कोई कुछ नहीं सीखता। हमें अपने जीवन में परिवर्तन लाने की इच्छा होने पर भी अहंकार उसमें बाधा देता है और उस अहंकार का नाश सेवा के माध्यम से सरलतापूर्वक हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – ''परोपकार का प्रत्येक कार्य, सहानुभूति का प्रत्येक विचार, दूसरों के सहायतार्थ किया गया प्रत्येक कर्म, प्रत्येक शुभ कार्य हमारे क्षुद्र अहंभाव को प्रतिक्षण घटाता रहता है और हममें यह भावना उत्पन्न करता है कि हम न्यूनतम और तुच्छतम हैं, और इसीलिए ये सब कार्य श्रेष्ठ हैं।''[३] रामायण के महत्त्वपूर्ण सेवापरायण पात्र लक्ष्मणजी कहते हैं कि सभी प्रकार की साधनाओं के अंत में अहंकार का नाश होता है, परन्तु सेवारूपी साधना में पहले अहंकार का नाश होता है, उसके बाद सेवा प्रारम्भ होती है।

सेवा से विनम्रता आती है – तुलसीदास जी संतों के हृदय के बारे में कहते हैं –

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।[४]

अर्थात् संतों का हृदय मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियों ने कहा है, परन्तु उन्होंने असली बात कहना नहीं जाना, क्योंकि मक्खन तो ताप मिलने से पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरों के दुख से पिघल जाते हैं। वास्तव में जो दूसरों के दुख को देखकर संवेदनशील हो, वैसे व्यक्ति द्वारा की गई सेवा ही स्वाभाविक सेवा होती है और इस प्रकार सेवा से विनम्रता की भावना स्वत: आ जाती है।

अपने से बड़ों की सेवा द्वारा विनम्रता का संस्कार उत्पन्न होता है। इसलिए संयुक्त परिवार में रहनेवाले बच्चों में विनम्रता अधिक देखी जाती है। संयुक्त परिवार में बच्चों को अपने दादा-दादियों का प्रेम मिलता है। बच्चे उस प्रेम से उनसे बँध जाते हैं। जब वे बड़े होते हैं, तब अपने दादा-दादी की वृद्धावस्था के कष्ट को देख संवेदनशील हो उनकी सेवा करने लगते हैं और उनमें विन्रमता आती है। कहते हैं 'विनयेन सर्वं प्राप्यते' अर्थात् विनय से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है।

सुभाषित उच्च स्वर में यह उद्घोषित करते हैं –

भवन्ति नम्रस्तरव: फलोद्गमै:
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घना:।
अनुद्धता: सत्पुरुषा: समृद्धिभि:
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।[५]

अर्थात् वृक्ष फल लग जाने पर झुक जाते हैं, जल वाले बादल भी समीप आ जाते हैं, सत्पुरुष सम्पत्ति के आने पर उदार हो जाते हैं, यह (विनम्रता) परोपकारियों का स्वभाव ही होता है।

सेवा से मन की निर्मलता – सेवा का मुख्य फल तो आत्मशुद्धि है। सेवा हमें पवित्र बनाती है। स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों में 'यदि तुम सोचो कि तुमने इस शरीर को, जिसका अहंभाव लिये बैठे हो, दूसरों के निमित्त उत्सर्ग कर दिया है, तो तुम इस अहंभाव को भी भूल जाओगे और अन्त में विदेह-बुद्धि आ जायेगी। एकाग्रचित्त से दूसरों के लिए जितना सोचोगे, उतना ही अपने अहंभाव को भी

भूलोगे। इस प्रकार कर्म करने पर जब क्रमश: चित्तशुद्धि हो जायेगी, तब इस तत्त्व की अनुभूति होगी कि अपनी ही आत्मा सब जीवों में विराजमान है। दूसरों का हित करना आत्मविकास का उपाय है, एक पथ है। इसे भी एक तरह की साधना जानो। इसका उद्देश्य भी आत्म-विकास है। ज्ञान, भक्ति आदि की साधना से जैसा आत्म-विकास होता है, परार्थ कर्म करने से भी वैसा ही होता है।''[६] वास्तव में निष्काम भाव से किये गये सेवा से चित्तशुद्धि होती है और चित्तशुद्धि से मुक्ति होती है।

सेवा सम्बन्धों को जोड़ती है – यदि परिवार का कोई सदस्य अस्वस्थ हो जाये, तब बाकी सदस्य उसकी सेवा में कुछ-न-कुछ योगदान देने लगते हैं। इस प्रकार उनकी भावनाओं का आदान-प्रदान होने लगता है और उनके सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसके जीवन में भावनाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहीं एक-दूसरे की भावनाओं को समझने तथा शान्तिपूर्वक रहने के लिये सेवा आवश्यक मार्ग है। जहाँ वृद्धजन बच्चों को अच्छे संस्कार और अपने अनुभवों से उनका जीवन गढ़ते हुए सेवा करते हैं, वहाँ बच्चे अपने वृद्ध दादा-दादी की यथासम्भव सेवा करके अपने सम्बन्धों को और भी मजबूत करते हैं। एक परिवार, समाज या राष्ट्र तभी शान्तिमय और सफल हो सकता है, जब इनके प्रत्येक सदस्य में सेवारूपी कर्तव्य का भाव होगा, नहीं तो सम्बन्धों में सदैव घर्षण उत्पन्न होगा और परिवार या समाज टूट जायेगा। सेवा मात्र अपनों को ही नहीं, वरन् परायों को भी अपना बना देती है। किसी संकटकालीन स्थिति में, किसी अपरिचित व्यक्ति द्वारा की गई सहायता से हम उसके आजीवन ऋणी हो जाते हैं, इसके पश्चात् उस अपरिचित व्यक्ति से हमारे सम्बन्ध अपने पारिवारिक सदस्यों की भाँति हो जाते हैं। विपदाओं के समय अथवा असमर्थ व्यक्तियों के सहायतार्थ जब कुछ लोग स्वयंसेवक के रूप में एक साथ सेवा कार्य करते हैं, तो उन लोगों के बीच भी आपसी सम्बन्ध निर्मित होता है। इस प्रकार सेवा के माध्यम से नये सम्बन्ध तैयार होते हैं तथा पुराने सम्बन्ध और भी मजबूत हो जाते हैं। सेवा सदैव सम्बन्धों को जोड़ती है।

नि:स्वार्थ भाव और शक्ति का जागरण – सेवा से नि:स्वार्थ भाव का उदय होता है। जब तक व्यक्ति अपने विषय में ही सोचता रहता है, तब तक वह सकाम कर्म ही करता रहता है। अपने विषय में ही व्यस्त रहने के कारण वह चिंताग्रस्त रहता है, परन्तु सेवा के द्वारा व्यक्ति अन्य के विषय में सोचता और करता है, जिससे वह नि:स्वार्थ होता है। नि:स्वार्थता महान शक्ति का स्रोत होती है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – ''परोपकार ही जीवन है, परोपकार न करना ही मृत्यु है। जितने नरपशु तुम देखते हो, उनमें ९० प्रतिशत मृत हैं, वे प्रेत हैं, क्योंकि मेरे बच्चो, जिसमें प्रेम नहीं है, वह जी भी नहीं सकता। मेरे बच्चो ! सबके लिये तुम्हारे हृदय में पीड़ा हो – गरीब, मूर्ख एवं पद-दलित मनुष्यों के दुख को तुम अनुभव करो, तब तक अनुभव करो, जब तक तुम्हारे हृदय की धड़कन न रुक जाय, मस्तिष्क चकराने न लगे और तुम्हें ऐसा प्रतीत होने लगे कि तुम पागल हो जाओगे – फिर ईश्वर के चरणों में अपना हृदय खोलकर रख दो, और तब तुम्हें शक्ति, सहायता और अदम्य उत्साह की प्राप्ति होगी।''[१३] स्वामीजी ने अपने एक शिष्य को यह उपदेश देते हुए कहा था, ''तू काम में लग जा, फिर देखेगा, इतनी शक्ति आयेगी कि तू उसे सम्भाल न सकेगा। दूसरों के लिये रत्ती भर काम करने से भीतर की शक्ति जाग उठती है। दूसरों के लिये रत्ती भर सोचने से धीरे-धीरे हृदय में सिंह का-सा बल आ जाता है।''[७]

सेवा की आवश्यकता – वर्तमान समय में मनुष्य की संवेदनाएँ अत्यन्त कम हो चुकी हैं। आज व्यक्ति इलेक्ट्रानिक्स मीडिया के पीछे इतना पागल हो चुका है कि उसके पास अपने परिवार के सदस्यों से दो पल बात करने का भी समय नहीं है, परन्तु सोशल मीडिया पर व्यस्त होकर वह स्वयं ही नैराश्य जीवन की सृष्टि कर रहा है। सड़क पर पड़े एक दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की सहायता करनेवाले कम होते हैं और उस दुर्घटना की तस्वीर व वीडियो को अपने सामाजिक मीडिया पर प्रेषित करनेवाले अधिक होते हैं। पर यही सब बातें हमें दुख और निराशा की ओर ले जाती हैं। वास्तविक सुख तो दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की सहायता करनेवालों को मिलता है, ऐसी सेवा करने वालों को ही आत्मसन्तुष्टि मिलती है। इलेक्ट्रानिक्स यंत्र पूर्णत: दोषमय नहीं हैं, पर उनका प्रयोग सम्बन्धों को जोड़ने के लिए किया जाना चाहिए। इस सेवा के अभाव ने ही परिवारों को तोड़ा है। परिवार के सदस्यों के बीच अपने सुख-दुख को बाँटने और एक-दूसरे की सहायता करने की आंतरिक इच्छा का अभाव होता जा रहा है। हम अपनी सुविधाओं के लिये ही चिंतित होते हैं और अपनी पारिवारिक स्थिति के अनुसार हम स्वयं समायोजित न होकर अपनी इच्छापूर्ति

के लिये परिवार के सदस्यों के साथ विवाद करके अशान्ति का वातावरण बना लेते हैं। परन्तु परिवार को जोड़ने के लिये आवश्यक है कि हम अन्य सदस्यों की समस्याओं को समझें और उनकी सहायता करने का प्रयास करें। हममें सेवापरायणता का अभाव ही वर्तमान परिस्थितियों का सूचक है तथा सेवापरायणता के माध्यम से ही इसका मूल समाधान सम्भव हो सकेगा।

सेवा हमारा कर्तव्य है – शिशु जब गर्भ में रहता है, तब से लेकर जन्म लेने के बाद तक तथा जन्म से लेकर आत्मनिर्भर होने तक उसे प्रत्यक्ष रूप से दूसरों की सेवा की आवश्यकता होती है, तथा आत्मनिर्भर होने के पश्चात् भी उसे आजीवन अप्रत्यक्ष रूप से दूसरों की सेवा की आवश्यकता होती है। वास्तव में हमने जीवनधारण करते ही सेवाएँ-ही-सेवाएँ ली हैं। अस्पताल में चिकित्सा की सेवा, पाठशाला में शिक्षा की सेवा, आवागमन हेतु यातायात की सेवा, जीवन के लिये अन्न-जल की सेवा, विभिन्न सुविधाओं के लिए विद्युत आदि की सेवा। ऐसी ही न जाने कितनी सेवाओं को लेकर हम अपना जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। हम ऋणी होते हैं अपने माता-पिता के जिन्होंने हमें जन्म देकर हमारा यथासम्भव पालन-पोषण किया तथा हमें आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया। हम इतिहास के उन महापुरुषों के भी ऋणी हैं, जिनके बलिदान पर हमने स्वतन्त्र राष्ट्र में जन्म लिया है तथा उन सपूत राष्ट्र रक्षक सैनिकों के भी हम ऋणी हैं, जो अपने प्राण संकट में रखकर हमें निष्कंटक रखते हैं। इस प्रकार सेवा मनुष्य जाति का जन्मजात कर्तव्य होता है। अत: उसे आत्मनिर्भर होकर परिवार, समाज और राष्ट्र को यथासम्भव सेवा देनी चाहिए।

समुद्र-मंथन के समय विष से भयभीत देवतागण जब भगवान शंकर की शरण में आते हैं, तो भगवान देवी सती से कहते हैं – ''देवि ! बड़े दुख की बात है ! देखो तो सही, समुद्र-मंथन से निकले हुए कालकूट विष के कारण प्रजा पर कितना बड़ा दुख आ पड़ा है ! ये बेचारे किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते हैं। इस समय मेरा कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ। जिनके पास शक्ति-सामर्थ्य है, उनके जीवन की सफलता इसी में है कि वे दीन-दुखियों की रक्षा करें। सज्जन पुरुष अपने क्षणभंगुर प्राणों की बलि देकर भी दूसरे प्राणियों के प्राण की रक्षा करते हैं।''[८] इस प्रकार कहकर भगवान कालकूट विष पी गए।

हम सब चाहते हैं कि लोग हमें प्रेम करें, सम्मान दें, पर यह तभी मिलता है, जब हम दूसरों की सेवा करते हैं, दूसरों को प्रेम करते हैं, सम्मान देते हैं। अत: हम अपने सेवारूपी कर्तव्य का निर्वाह करें, हमें प्रेम स्वत: ही प्राप्त होगा। इससे पहले कि सेवा हमसे बलपूर्वक ली जाये, हमें स्वत: इसका प्रारम्भ कर देना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – ''कुछ भी न मांगो, बदले में कोई चाह न रखो। तुम्हें जो कुछ देना हो, दे दो। वह तुम्हारे पास वापस आ जायेगा, लेकिन आज ही उसका विचार मत करो। वह हजार गुना हो वापस आयेगा, पर तुम अपनी दृष्टि उधर मत रखो। देने की शक्ति पैदा करो। दे दो और बस काम समाप्त हो गया। यह बात जान लो कि सम्पूर्ण जीवन दानस्वरूप है, प्रकृति तुम्हें देने के लिये बाध्य करेगी। इसलिए स्वेच्छापूर्वक दो। एक-न-एक दिन तुम्हें दे देना ही पड़ेगा। इस संसार में तुम जोड़ने के लिये आते हो। मुट्ठी बाँधकर तुम चाहते हो लेना, किन्तु प्रकृति तुम्हारा गला दबाती है और तुम्हें मुट्ठी खोलने को मजबूर करती है। तुम्हारी इच्छा हो या न हो, तुम्हें देना ही पड़ेगा। जिस क्षण तुम कहते हो कि 'मैं नहीं दूँगा' एक घूँसा पड़ता है और तुम चोट खा जाते हो, जगत् में आये हुए प्रत्येक व्यक्ति को अन्त में अपना सर्वस्व दे देना होगा। इस नियम के विरुद्ध बरतने का मनुष्य जितना अधिक प्रयत्न करता है, उतना ही अधिक वह दुखी होता है। हममें देने की हिम्मत नहीं है, प्रकृति की यह उदात्त माँग पूरी करने के लिये हम तैयार नहीं हैं, और यही है हमारे दुख का कारण। जंगल साफ हो जाते हैं, बदले में हमें उष्णता मिलती है। सूर्य समुद्र से पानी लेता है, इसलिए कि वह वर्षा करे। तुम भी लेन-देन के यंत्र मात्र हो। तुम इसलिए लेते हो कि तुम दो। बदले में कुछ भी मत माँगो। तुम जितना ही अधिक दोगे, उतना ही अधिक तुम्हें वापस मिलेगा। जितनी ही जल्दी इस कमरे की हवा तुम खाली करोगे, उतनी ही जल्दी यह बाहरी हवा से भर जायेगा। पर यदि तुम सब दरवाजे-खिड़कियाँ और छिद्र बन्द कर लो, तो अन्दर की हवा अन्दर रहेगी जरूर, पर बाहरी हवा कभी अन्दर नहीं आयेगी, जिससे अन्दर की हवा दूषित, गंदी और विषैली बन जायेगी। नदी स्वयं को निरन्तर समुद्र में खाली किये जा रही है और वह फिर से लगातार भरती आ रही है। समुद्र की ओर गमन बंद मत करो। जिस क्षण तुम ऐसा करते हो, मृत्यु तुम्हें आ दबाती है।[९]

विद्या-बुद्धि, धन-जन, बल-वीर्य जो कुछ प्रकृति हमलोगों के पास एकत्र करती है, वह समय आने पर बाँटने

के लिए है, हमें यह बात स्मरण नहीं रहती, सौंपे हुए धन में आत्म-बुद्धि हो जाती है, बस इसी प्रकार विनाश का सूत्रपात होता है।[१०]

सेवा धर्म है – भगवान श्रीराम भरतजी के एक प्रश्न के उत्तर में कहते हैं –

परहित सरिस धरम नहीं भाई।
पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।।[११]

अर्थात् दूसरों की भलाई के समान अन्य कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है और दूसरों को कष्ट देने के समान अन्य कोई पाप नहीं है। जीवन के विभिन्न पड़ावों पर कभी-कभी हम द्वंद्व में पड़ जाते हैं कि वास्तव में धर्म क्या है और अधर्म क्या है। कभी ऐसी परिस्थिति आती है कि अपने धर्म का निर्णय करना तथा धर्म में भी अपनी प्राथमिकता निश्चित करना कठिन हो जाता है। पर हम श्रीरामजी के उपरोक्त कथन से धर्म की एक सरल परिभाषा पाते हैं। द्वेष के स्थान पर प्रेम के बीज बोना, दीन-दुखियों की सहायता करना, असहायों की सहायता करना आदि ही धर्म है। सम्प्रदाय या जाति के आधार पर बाँटनेवाला धर्म नहीं कहा जा सकता, जोड़नेवाला धर्म ही धर्म है और वह परहित अर्थात् सेवा मार्ग है। किसी को पीड़ा पहुँचाना ही अधर्म है। यदि हम संत महापुरुषों का जीवन देखें, तो पायेंगे कि परहित को ही उन्होंने अपनी उपासना बना ली थी। बुद्ध देव ने किसी ईश्वर की कोई पुष्टि नहीं की, पर सेवा और अहिंसा का उपदेश देकर उन्होंने धर्म की व्याख्या की। श्रवण कुमार ने अपने माता-पिता की सेवा को ही धर्म सिद्ध कर दिखाया। आरुणि और उपमन्यु ने गुरु-सेवा को ही अपना धर्म माना। छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप और लक्ष्मीबाई जैसे राजधर्मियों ने प्रजा की सेवा-सुरक्षा को अपना धर्म बना लिया। गुरु गोविन्द सिंह और गुरु तेग बहादुर ने अन्याय के विरुद्ध लड़ाई करके उस जन-सेवा को ही धर्म का स्वरूप-प्रदान किया। सती सावित्री और माता सीता ने पति-सेवा को स्त्री-धर्म सिद्ध किया। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महापुरुषों ने समाज सेवा को ही धर्म प्रतिपादित किया। इस तथ्य को हम एक सत्य घटना के माध्यम से समझ सकते हैं –

एक बार संत ज्ञानेश्वर नदी के तट से गुजर रहे थे। निकट ही एक महात्मा जप कर रहे थे तथा एक बालक नदी में स्नान कर रहा था। अचानक पैर फिसलने के कारण बालक नदी की धारा में चला गया। उसने बचाने की पुकार लगायी, तब जप करते हुए महात्मा ने आँख खोलकर देखा और पुन: बंद कर ली। संत ज्ञानेश्वर नदी में कूद पड़े और बालक को बचाकर ले आये। तट पर जप कर रहे महात्मा से संत ज्ञानेश्वर ने पूछा कि आप क्या कर रहे हैं। महात्मा ने उत्तर दिया कि वे जप कर रहे हैं। संत ज्ञानेश्वर ने पुन: पूछा कि ईश्वर के दर्शन हो गये क्या? महात्मा ने कहा कि वे मन को एकाग्र करने का प्रयास कर रहे हैं। तब संत ज्ञानेश्वर ने कहा कि जाओ और दीन-दुखियों की सेवा करो, लोगों की सहायता करो अन्यथा इन उपासनाओं का कोई लाभ नहीं मिलेगा। महात्मा को अपनी भूल का ज्ञान हुआ कि डूबते हुए बालक को बचाना ही वास्तविक जप होता, वही सच्ची उपासना होती, उस समय वही उसका धर्म था। संत ज्ञानेश्वर ही नहीं, बल्कि जगत के समस्त संत, महापुरुष, जगत् के समस्त धर्मग्रंथ, बिना किसी विरोधाभास के एक स्वर में सेवा को श्रेष्ठ धर्म मानते हैं। समस्त महापुरुषों के जीवन में भी हम यही पाते हैं कि वे सदैव दीन-दुखियों की सेवा को श्रेष्ठ साधना स्वीकार करते हैं।

अभिभावकों के प्रति – प्रत्येक माता-पिता यह चाहते हैं कि उनकी संतान वृद्धावस्था में उनके सहारे की लाठी बने, उनकी वैसी ही व्यवस्था और देखभाल करे, जैसा उन्होंने अपनी संतानों के लिये की थी। पर अपने बच्चों के प्रति सब कुछ न्यौछावर करने और उन्हें सब सुख-सुविधाएँ देने के बाद भी वृद्धावस्था में उनकी संतानें उनकी वैसी सेवा नहीं करतीं, सेवा की परिस्थिति आने पर वे उन्हें झंझट लगने लगते हैं अथवा वे उन्हें वृद्धाश्रम छोड़ आते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने अपनी संतानों को सेवापरायण होने का संस्कार नहीं दिया। बचपन से जितना हृदय का विकास होना चाहिए था, जितनी उदारता व सेवा की भावनाएँ उदित होनी चाहिए थीं, उतनी सेवा-भाव की शिक्षा वे नहीं पा सके। बल्कि उसकी जगह उन्होंने बचपन से धनवान बनने और सुख-सुविधाओं में रहने की शिक्षा पायी थी। अभिभावकों को इस बात पर अत्यन्त सजग रहना चाहिए कि कहीं वे अपनी संतानों को पैसा कमाने की मशीन तो नहीं बना रहे हैं। कुछ अभिभावक अपनी संतानों को मनोरंजन के लिए सदैव सिनेमा देखने के लिए भेजा करते हैं, परन्तु समय आने पर बाढ़-पीड़ित या भूकम्प से क्षतिग्रस्त लोगों के सेवा-कार्यों में जाने की अनुमति इसलिए नहीं देते कि उनका समय नष्ट होगा। पर आश्चर्य का विषय यह है कि सेवा-कार्य करनेवाले लोगों में सन्तुष्टि तथा मन

की शान्ति अधिक होती है, वे दूसरों के कष्ट को देखकर द्रवित होते हैं और इस प्रकार उनमें सेवा के अंकुर स्वत: ही उदित हो उठते हैं । वे मनुष्यों के दुखों के प्रति संवेदनशील होकर सहानुभूतिपूर्ण सेवाकार्य में अग्रसर होते हैं। मनोरंजन तथा सुख-सुविधाओं में बढ़नेवाले बच्चे सेवा की परिस्थिति उत्पन्न होने पर संवेदनहीन रहकर बला टालने का प्रयास करते हैं। इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करें।

दो मेधावी छात्र थे। उन दोनों के पिता एक ही पद पर, एक ही शासकीय विभाग में कार्यरत थे। प्रथम छात्र को उसके पिता प्राय: ही आश्रम ले जाया करते थे तथा समय-समय पर आश्रम के सेवा-कार्यों में योगदान देने की अनुमति देते थे। उसके जन्मदिन पर उसे अनाथ आश्रम ले जाकर उसके हाथों से अनाथ बच्चों को उपहार और भोजन दिलवाते थे। पर दूसरे छात्र के माता-पिता उसे सदैव पढ़ने में ही व्यस्त रहने को कहते थे। उसे मनोरंजन के लिये प्राय: रेस्तराँ (भोजनालय) और सिनेमा हॉल ले जाया करते थे। उसके जन्म दिन पर उसे बड़े-बड़े उपहार देते तथा बड़े होटल में ले जाकर भोजन करवाते थे। मार्ग में दिखाई पड़ने वाले भिखारियों को कुछ भी देने से मना करते और कहते कि ये उनके कर्मों का ही फल है। बड़े होकर दोनों ही छात्र बड़े पद पर आरूढ़ हुए, पर समय के साथ परिवार में परिस्थितियाँ बदलीं । दोनों छात्र अब विवाहित युवा हो चुके थे और उन दोनों के माता-पिता वृद्ध हो चले थे। आश्रम जानेवाले बालक ने अंतिम समय तक अपने माता-पिता की आंतरिक भाव से सेवा की, क्योंकि उसे सेवा की शिक्षा घर में तथा आश्रम में मिला करती थी। पर दूसरे ने अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम ले जाकर छोड़ दिया, क्योंकि संवेदनशीलता और सेवा जैसी किसी भावना की शिक्षा तो उसे मिली नहीं थी, किसी को दुख में देखकर उसे संवेदनहीन रहने का अभ्यास हो चुका था। यह घटना हमें शिक्षा देती है कि अभिभावकों को अपने बच्चों को सेवा के संस्कार देने चाहिए।

अभिभावकों को दूसरी महत्वपूर्ण बात यह भी स्मरण रखनी चाहिए कि वे स्वयं अपने माता-पिता के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं। क्योंकि बच्चे सुनने की अपेक्षा देखकर अधिक सीखते हैं। वे भविष्य में अपने माता-पिता से वैसा ही व्यवहार करेंगे, जैसा उन्होंने अपने दादा-दादी के साथ होता देखा था। इसे हम एक नाटक के एक अंश से समझ सकते हैं।

बच्चा – माँ ! पिताजी का कुर्ता फट गया है, इसे फेंक दूँ?

माँ – नहीं, उसे दर्जी से सिलवाकर ले आओ।

बच्चा – पर यह तो कुछ अधिक ही फट गया है, इसे सिलवाकर क्या करोगी?

माँ – उसे तेरे दादा को दे देंगे, अब वे इसे पहनेगें।

(कुछ दिन बाद) माँ ने अलमारी में कुछ फटे कपड़ों को देखा)

माँ – अरे ! इन फटे कपड़ों को यहाँ आलमारी में सम्हालकर क्यों रखा है?

बच्चा – माँ, जब आप बूढ़ी हो जाओगी, तब मैं इन्हें सिलवाकर आपको पहनने के लिये दूँगा।

इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि बच्चे वही सीखते हैं, जो वह देखते हैं, अत: अभिभावकों को अपने बड़ों के साथ किए गए व्यवहार के प्रति सजग होना चाहिए। ○○○

सन्दर्भ – ७. रामचरितमानस, उत्तर काण्ड **८.** रामचरितमानस ७/१२०/१५ **९.** विवेकानन्द साहित्य ३/५९ **१०.** रामचरितमानस ७/१२४/८ **११.** अभिज्ञानशाकुन्तलम् ५/१२ **१२.** विवेकानन्द साहित्य ६/७७ **१३.** वि. सा. ३/३३३ **१४.** वि. सा. ६/१२९ **१५.** श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ८,अध्याय ७/३७-३९ **१६.** वि. सा. ९/१७९ **१७.** वि. सा. ९/२१६-१७ **१८.** रामचरितमानस ७/४१/१-३

माँ तेरी कृपा क्या !

आनन्द कुमार तिवारी पौराणिक

तेरी ममता की गहराई, तेरी करुणा की ऊँचाई,
तेरे स्नेह की परछाई कौन तौल सका है माँ?
तेरी प्रेम की शुचिता, दया विनय क्षमाशीलता,
सहज सरल पावनता रहस्य कौन खोल सका है माँ?
पीड़ा, दुख, संकट, विपदा में, आधि-व्याधि में,
घोर विपत्ति दुविधा में कौन तुझे न पुकार सका है माँ?
प्रति शब्द अक्षर चन्द्रबिन्दु, मात्रा उच्चारण अमृत सिन्धु,
शीतल सरल जल इन्दु, तेरी अँगुली बिन पकड़े पथ कौन टटोल सका है माँ?
दरस परस आशीष छइयाँ, लाड़ दुलार प्यार बलैयाँ,
तेरी गोदी मेरी दुनियाँ, कृपा तेरी क्या कोई मोल सका है माँ?

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१७)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

झण्डू भटजी

मैं पहले ही कह आया हूँ कि जब मैं जामनगर में पहली बार आया, उस समय भटजी वहाँ अनुपस्थित थे, चिकित्सा करने अन्यत्र गये थे । उनके लौट आने के बाद धन्वन्तरी-धाम में उनके साथ परिचय हुआ । सुना था कि भटजी अद्वितीय दाता हैं ।

जब वे सेठजी के घर में मुझे देखने जाते थे, उसके कुछ काल पूर्व ही विद्यासागर का देहावसान हुआ था और उनकी एक जीवनी भी छपी थी । भटजी ने मुझे पैसे देते हुए उनकी एक जीवनी मँगा देने का अनुरोध किया था । पुस्तक आ जाने पर प्रतिदिन मुझसे वह जीवनी सुनने वे सेठजी के घर जाया करते थे । वे जब भी विद्यासागर की दयालुता के किसी कार्य की बात सुनते, तो जोरों से रो उठते ।

स्वामीजी जब जूनागढ़ में थे, तब भटजी के साथ उनका परिचय हुआ था । वहीं स्वामीजी के मुख से – "दयानिधे तेरी गति लखि ना परे" – यह भजन सुनकर भटजी रो पड़े थे । स्वामीजी कहते, "मैंने अनेक दाता देखे हैं, परन्तु झण्डू भट विठ्ठलजी जैसा दयालु व्यक्ति अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आया ।"

भटजी ने कुछ दिन योग-साधना की थी और बड़े नियम से चलते थे । आहार, शौच आदि के समय में कोई बदलाव नहीं होता था, परन्तु विद्यासागर की जीवनी सुनते समय एक दिन उनके शौच का समय बीत गया । कहावत है, "जोगी, जैसा रोगी ।" उस एक दिन शौच में व्यतिक्रम के फलस्वरूप वे अस्वस्थ हो गये और कई दिनों तक पीड़ित रहे ।

भटजी के यहाँ मैंने देखा कि उनका घर मानो एक अस्पताल है । खाँसी, दमा तथा बुखार आदि के रोगियों से उनका घर भरा हुआ था । उन लोगों की दवा तथा पथ्य की व्यवस्था भी उन्हीं के घर से हो रही थी ।

भटजी भोर में चार बजे उठकर अपनी पूजा-संध्या आदि निपटाने के बाद बाहर बैठ जाते । इसके बाद दल-के-दल लोग आकर उनके साथ चाय पीते और औषधि-परामर्श ले जाते । भटजी केवल औषधि-परामर्श ही नहीं देते, अपितु धनी-निर्धन दोनों तरह के लोगों को अपने बाहरी कमरे में स्थित चिकित्सालय से ८० रुपये तोले का 'मकरध्वज' तक, ऐसे ही दे डालते ।

इसके बाद नौ बजे वे अपने टमटम में बैठकर रोगियों को नि:शुल्क ही देख आते । एक बार भटजी वाधवान के ठाकुर साहब के यक्ष्मा (टी.बी.) रोग की चिकित्सा के लिये उनके यहाँ गये । लोगों के मुख से मैंने किम्वदन्ती सुनी है कि जब भटजी वहाँ से लौटने लगे, तो ठाकुर साहब ने सात हजार रुपयों की सात थैलियाँ भटजी के सामने रख दीं और बोले, "मैं आपको कोई पारिश्रमिक नहीं दे रहा हूँ । आप कुछ कर नहीं सके, इसका मुझे कोई दुख नहीं है। यह रोग असाध्य है । आपने मुझे जो औषधियाँ दी हैं, उनके लिये थोड़ा-सा कुछ दे रहा हूँ ।" भटजी उच्च स्वर में रो उठे और बोले, "मेरा शास्त्र कहता है कि रोग का सही पहचान होने से रोगी की मृत्यु नहीं होती । मैं आपके रोग का सही निदान नहीं कर सका । इसीलिये चिकित्सा के द्वारा नीरोग भी नहीं कर सका । आज देश में यदि हिन्दू राजा होता, तो मुझे सजा मिलती । परन्तु आप मुझे पुरस्कार दे रहे हैं, मैं भला इसे कैसे स्वीकार कर सकता हूँ?" भटजी रोते हुए लौट आये । उनके ऊपर करीब एक लाख रुपयों की देनदारी थी । जामनगर के राजा उसे पूरा चुका देना चाहते थे, परन्तु भटजी ने उनकी सहायता को अस्वीकार कर दिया ।

दूसरे दिन एक अन्य कथा सुनने को मिली । एक दिन भटजी के घर में एक ब्राह्मण 'जय रघुनाथजी' कहकर मुष्टिभिक्षा लेने आये । ऐसे ब्राह्मणों के पास दसमुखी थैली होती है । इनमें से किसी मुख में चावल, किसी में दाल, किसी में आटा आदि डालकर थैले के दस पेटों को भरा जाता है ।

भटजी के घर के प्रांगण में जूठे बर्तनों का ढेर पड़ा रहता था । ब्राह्मण ने देखा कि आसपास कोई नहीं है । उसने चुपचाप एक कटोरी उठाकर अपनी थैली के एक पेट में डाल लिया । अब ब्राह्मण लौटने की जल्दी में था, परन्तु

भटजी ने ऊपर से सब देख लिया था । वे तत्काल उसे ऊपर बुलवाकर बोले, "महाराज, थैली को वहाँ रख दीजिये और आप इस बिस्तर पर बैठिये ।" ब्राह्मण भय से संकुचित होकर बैठ गया । भटजी ने एक नौकर को बुलाकर कहा, "एक नयी थाली-कटोरी में सीधा सजाकर ले आओ और उसके साथ एक नया लोटा तथा एक गिलास भी लाना ।" नौकर ने अविलम्ब वह सब ला दिया ।

ब्राह्मण ने सोचा, "चलो, जान बची – भटजी ने कुछ देखा नहीं है । वह अपनी थैली के पेट भरने के लिये जल्दबाजी में थैली उठाने के लिये खड़ा हो रहा था कि भटजी बोले, "थैली मत लाइये । ये सभी बर्तन आप ही के लिये हैं । महाराज, आपके यहाँ अवश्य ही बर्तनों का अभाव है, नहीं तो वह कटोरी क्यों लेते? अपराध हम लोगों का है, क्योंकि हम लोग आपके अभाव की खोज-खबर नहीं रखते । आप यह सब ले जाइये ।" तब ब्राह्मण रोते हुए भटजी के पाँव पकड़कर बोले, "आप मनुष्य नहीं, देवता हैं ।" तभी से उस ब्राह्मण का जीवन पूरी तौर से बदल गया ।

एक दिन मैंने भ्रमण से लौटकर देखा कि पूरे शरीर में दाद से आक्रान्त एक कुरूप ब्राह्मण भटजी की शय्या पर लेटा है और एक महिला उसके शरीर पर तेल मल रही है । भटजी उसके समीप बैठे किसी आयुर्वेदिक ग्रन्थ के पन्ने पलट रहे हैं ।

मैंने पूछा, "यह क्या भटजी?" वे बोले, "इस व्यक्ति को कामोन्माद हुआ है । वैद्यक शास्त्र का विधान है कि ऐसे रोगी को वैद्य के समक्ष कोमल शय्या पर सुलाकर नारी के हाथों तेल मलवाया जाय । वही व्यवस्था करके अब मैं औषधि ढूँढ़ रहा हूँ ।" मैंने पूछा, "परन्तु आपके बिछौने पर क्यों?" भटजी बोले, "नरम बिस्तर की व्यवस्था करके लगाने में देरी होती, इसीलिए मैंने यह व्यवस्था की है ।"

क्रमशः वह पागल भी भटजी के परिवार में सम्मिलित हो गया ।

भटजी का पूर्वोक्त रोग जल्दी ठीक न होने के कारण वे वायु-परिवर्तन के लिये मुझे साथ लेकर मैदान के बीच में स्थित एक बँगले में रहने चले गये ।

एक दिन दोपहर के समय हम दोनों का भोजन हो जाने के बाद, दोनों हाथ-मुँह धो रहे थे, उसी समय दूर से एक स्त्री का कण्ठस्वर सुनाई दिया । मैं कुछ समझ नहीं सका । परन्तु भटजी ने हड़बड़ा कर तत्काल अपना खड़ाऊँ पहना और उसी ओर चल दिये । मैं कमरे में उनका इन्तजार करता रहा ।

वे जब लौटे, तो उनका मुख लाल हो रहा था और उनके शरीर से पसीने की धार बह रही थी । मैंने पूछा, "यह क्या ! कहाँ गये थे?" भटजी बोले, "मैदान में एक स्त्री ने गोबर इकट्ठा करने के बाद एक राहगीर से उसे अपने सिर पर उठा देने का अनुरोध किया । राहगीर ने उसे अनसुना कर दिया था ।" भटजी ने दूर से ही उस स्त्री की समस्या को समझकर उसका बोझ उठा देने चले गये थे । उनकी आयु उस समय साठ से सत्तर साल के बीच थी ।

सेवाव्रत की शिक्षा तथा शुरुआत

वृद्ध भटजी एक श्लोक बोला करते थे । अब वह याद तो नहीं है, परन्तु उसका तात्पर्य यह है, "मैं किसी ऐसे स्वर्ग या वैकुण्ठ की कामना नहीं करता, जहाँ मानव की सेवा या उपकार करने का कोई अवसर न हो ।"[१] बाद में एक बार मेरे मुख से वृद्ध भटजी का यह श्लोक सुनकर स्वामीजी की आँखों में आँसू आ गये थे ।

भटजी का जीवन देखकर मुझे विशेष रूप से इस बात की धारणा हुई कि मनुष्य की सेवा करना तथा मनुष्य से प्रेम करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है । उनकी बीमारी के समय उनकी सेवा करके मुझे विशेष आनन्द मिलता था ।

इसी जामनगर में मैंने चरक, सुश्रुत, उपनिषद तथा यजुर्वेद का पाठ किया । **(क्रमशः)**

१. ग्रन्थकार अपने अन्तिम दिनों में कहा करते थे कि वह श्लोक सम्भवतः यह था –

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

* * *

जामनगर के महामहोपाध्याय पण्डित हाथीभाई शास्त्री के विषय में भी स्मृतिकथा लिखने की उनकी इच्छा थी; परन्तु उनकी वह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी । हम लोगों ने पण्डितजी को पत्र लिखा कि वे ग्रन्थकार के विषय में कुछ लिखें । इसके उत्तर में उन्होंने जो कुछ लिख भेजा था, वह इस प्रकार है – "ब्रह्मभावापन्न स्वामी श्री अखण्डानन्द जी महात्मा झण्डू भटजी के घर रसशाला में रहते थे और बीच-बीच में उनके साथ मेरे घर भी आते थे । झण्डू भट जी रन्तिदेव द्वारा कथित इस श्लोक की प्रतिदिन आवृत्ति किया करते थे –

को नु स्यादुपायोऽत्र येनाहं सर्वदेहिनाम् ।
अन्तःप्रविश्य सततं भवेयं दुःखभारभाक् ॥

(इस संसार में क्या ऐसा कोई उपाय है, जिसके द्वारा मैं समस्त दुखी प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट होकर स्वयं ही सतत उनके दुखों का भोग करता रहूँ?) – स्वामी अखण्डानन्द जी भी इस श्लोक को अपने मोटो (आदर्श-वाक्य) के रूप में बारम्बार आवृत्ति किया करते थे । इससे दुखी जनता के प्रति उनकी अनुकम्पा तथा उन लोगों के दुख-निवारणार्थ उनकी तीव्र आकांक्षा स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ करती थी ।"

शास्त्री हाथीभाई हरिशंकर, २३/४/१९३७

अहिंसा परमो धर्मः

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(गतांक से आगे)

अहिंसा से सम्बन्धित भावनाएँ

मैत्र्यादि चतुर्भावनाओं के अतिरिक्त मानसिक अहिंसा होती है । उसकी साधना हेतु हिंसावृत्ति के दोषों को प्रबलता से त्याग करने का प्रयास करना चाहिए । कृत, कारित, वांछित और अनुमोदित, हिंसा इन चार प्रकार की हो सकती है। पुन: लोभ, मोह और क्रोधपूर्वक ये चारों प्रकार की हिंसाएँ त्रिविध प्रकार की होती हैं। चाहे कैसी भी हिंसा हो, अपरिहार्य कर्म-सिद्धान्त के कारण दुखदायक होती है। बन्धनादि द्वारा किसी के वीर्य का नाश करने के फलस्वरूप हिंसक के मन और इन्द्रियाँ दुर्बल, वीर्यहीन हो जाते हैं। दूसरों को दुख प्रदान करने के कारण हिंसक को नरक, तिर्यग् आदि योनियों में दुख सहन करना पड़ता है और किसी प्राणी के प्राण नाश करने के फलस्वरूप हिंसक या तो स्वयं अल्पायु होता है, अथवा दीर्घायु होकर भी बहुत समय तक रुग्ण रहकर मृत्यु तुल्य कष्ट भोगता है। इस प्रकार हिंसा के दुष्परिणामों का चिन्तन कर उसके प्रति त्याग-बुद्धि दृढ़ करनी चाहिए।

इसी प्रकार अहिंसा के गुण का चिन्तन करना चाहिए। अहिंसा में ही सुख और शान्ति है तथा समाज की व्यवस्था का आधार भी अहिंसा है। इस विचार को दृढ़ करना चाहिए। हिंसा अपरिहार्य होते हुए भी जीवन का आधार या दिशा निर्देशक नहीं हो सकती। अहिंसा सभी नैतिकता, सभी धर्मों का मूल है तथा वही धर्म का शाश्वत, शुद्धतम रूप है। वस्तुत: अहिंसा कोई गुण विशेष नहीं, वह तो अनेक गुणों की समष्टि है। शान्ति, प्रेम, करुणा, दया, कल्याण, मंगल, अभय, रक्षा, क्षमा, प्रसाद आदि सभी गुण अहिंसा के ही पर्याय एवं अंग-प्रत्यंग हैं। प्रेम, आत्मीयता, त्याग, समता, करुणा, अहिंसा के आधार हैं। सभी प्राणियों के प्रति समभाव से व्यवहार करना यही अहिंसा है। सभी मानवों, प्राणियों को शान्ति पूर्ण जीने का अधिकार है, अत: जहाँ भी जीवन है, उसका आदर करना अहिंसा का ही रूप है। यही नहीं व्यावहारिक स्तर पर सहयोग एवं सहायता के बिना जीवन ही संभव नहीं है। अत: सह-अस्तिव के लिये भी अहिंसा अपरिहार्य है। भले ही हिंसा का पूर्णरूपेण परित्याग सम्भव न हो, तो भी यह तो निश्चित है कि जितनी कम हिंसा हो, उतना ही जीवन श्रेष्ठतर होगा – Less killing is better living. साधना में प्रवृत्त हुआ त्यागी साधक समस्त प्राणियों को संकल्प द्वारा अभय प्रदान करता है। अगर किसी संयोग अथवा कारणवश उसे हिंसा में प्रवृत्त होना पड़े, ऐसा कार्य करना पड़े, जिससे दूसरों को कष्ट हो, तो उसे इसके लिए पश्चात्ताप करना चाहिए। "धिक्कार है मुझे कि मैं सभी प्राणियों को अभय-प्रदान करने के बाद पुन: इसके विपरीत कार्य कर रहा हूँ। इस तरह स्वयं को कोसना, अहिंसा की भावनाओं को मन में बैठाने में अत्यन्त उपयोगी है।" मैं अभी तक अहिंसा में प्रतिष्ठित नहीं हो सका, यह सोचकर क्षोभ करना चाहिए तथा किसी भी स्थिति में हिंसा का अनुमोदन नहीं करना चाहिए। वर्तमान समय में जब हिंसा की सर्वत्र वृद्धि हो रही है तथा उसे अनिवार्य एवं आवश्यक माना जाने लगा है, अहिंसा एवं सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों पर से लोगों की आस्था हटती जा रही है, ऐसी स्थिति में पुन: अहिंसा के प्रति आदर स्थापित करने के लिए उपर्युक्त भावना करना अत्यन्त आवश्यक है। स्वामी विवकोनन्द ने कहा है : There is no justifiable killing and there is no righteous anger अर्थात् न्याय-संगत हिंसा और धार्मिक क्रोध जैसी कोई चीज नहीं है।

व्यावहारिक स्तर पर अहिंसा की साधना – जैसा कि कहा जा चुका है, पूर्ण अहिंसा एक उच्चतम आदर्श है, जिसका पालन व्यावहारिक दैनन्दिन जीवन में लगभग असम्भव है, अत: न्यूनतम हिंसायुक्त जीवन यापन करना ही अहिंसा की साधना का व्यावहारिक रूप है। इस दृष्टि से हिंसा के चार प्रकार किये जा सकते हैं (१) संकल्पी (२) विरोधी (३) उद्योगी (४) आरम्भी।

१. संकल्पी – संकल्पपूर्वक मानसिक उत्तेजना सहित तथा जान-बूझकर दूसरे का अकल्याण करने के उद्देश्य से की गयी हिंसा संकल्पी कही जाती है।

२. विरोधी – स्वयं तथा स्वयं से सम्बन्धित लोगों की निरीह, निरपराध की रक्षा के लिए जिस हिंसा को स्वीकार

किया जाता है, वह विरोधी हिंसा कहलाती है। धर्मयुद्ध इसी के अन्तर्गत आते हैं।

३. उद्योगी – खेती-बाड़ी, व्यवसायादि में अनिवार्य रूप से युक्त हिंसा को उद्योगी हिंसा कहा गया है।

४. आरम्भी – जीवन निर्वाह के साथ जुड़ी हुई हिंसा यथा – मकान साफ करने, भोजन पकाने, कपड़े धोने आदि में होने वाली हिंसा।

संकल्पी हिंसा का त्याग तो सर्वदा किया ही जाना चाहिए। बाकी तीन प्रकार की हिंसाएँ पूरी तरह से त्यागी नहीं जा सकतीं। उन्हें भी यथासम्भव कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि निरपराध और असम्बद्ध व्यक्ति या प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे।

अन्य यम-नियमों का अनुष्ठान – जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विभिन्न यम-नियमों में अहिंसा सर्वप्रथम एवं प्रमुख है तथा ये सारे यम-नियम, अहिंसा की सिद्धि के लिए ही हैं। यह भी बताया जा चुका है कि असत्य, परिग्रह, चोरी तथा अब्रह्मचर्य, प्रकारान्तर से हिंसा के ही रूप हैं। अत: इनका त्याग एवं सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना अहिंसा के ही रूप हैं। वस्तुत: समस्त आध्यात्मिक साधनाएँ अहिंसा के लक्ष्य की ओर ले जाने वाली ही हैं। एक सरल शान्त, पवित्र अनाडंबर-युक्त जीवन व्यतीत करना अहिंसक होने के लिए परमावश्यक है। विशेषकर आधुनिक काल में जब हमारे जीवन निर्वाह के लिए तथा सुख-सुविधा आदि के लिए अन्य प्राणियों को कष्ट देना अवश्यम्भावी हो गया है।

अहिंसा का विधेयात्मक पक्ष – अहिंसा का अर्थ केवल किसी की हत्या न करना या कष्ट न पहुँचाना मात्र नहीं है, उसका एक भाव-रूप, विधेयात्मक पक्ष भी है। सभी पर दया-भाव रखना तथा पर-पीड़ानिवृत्ति भी अहिंसा के ही रूप हैं। अत: सेवा, दान आदि द्वारा दूसरों के दुख दूर करने का प्रयत्न करना भी अहिंसा का ही प्रकार है।

अहिंसा एक व्रत के रूप में – जैन धर्म में अहिंसा को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। जैन गृहस्थ एवं संन्यासी अनेक व्रतों का पालन करते हैं, जिनमें अहिंसा व्रत सबसे महत्त्वपूर्ण है। संन्यासी कृत, कारित और अनुमोदित, मन, वचन एवं शरीर से की गयी सभी हिंसाओं का पूरी तरह त्याग करता है। अर्थात् शरीर, मन या वाणी से न किसी की हिंसा करना या कष्ट पहुँचाना, न ऐसा करवाना और न किसी के द्वारा किये गये का अनुमोदन करना। जब इस प्रकार का आचार जाति, देश, काल और समय के द्वारा अनवच्छिन्न होता है, तब महाव्रत कहलाता है **– जाति देशसमयावच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम्।**

इसे समझना आवश्यक है। जाति-अवच्छिन्न अहिंसा का उदाहरण है – मछुआरों की मत्स्यगत हिंसा और अन्य जातिगत अहिंसा अर्थात् उनकी हिंसा यदि केवल आजीविकार्थ मत्स्यों तक सीमित रहे, और अन्यत्र वे अहिंसक रहें, तो यह जाति-अवच्छिन्न अहिंसा होगी। इसी प्रकार देशावच्छिन्न अहिंसा है – ''तीर्थ में हनन नहीं करूँगा इत्यादि।'' कालावच्छिन्न अहिंसा है – चतुर्दशी या किसी पुण्य दिन में हनन नहीं करूँगा इत्यादि। यह अहिंसा समयावच्छिन्ना भी हो सकती है, जैसे ''देव-ब्राह्मण के लिये हिंसा करूँगा, अन्य किसी प्रयोजन से नहीं।'' समय का अर्थ कर्तव्य के लिये नियम भी हो सकता है, जैसे अर्जुन ने क्षत्रिय कर्तव्य की दृष्टि से युद्ध किया था। इस तरह जाति, देश, कालादि द्वारा अवच्छिन्न न होकर जो अहिंसा सर्वथा, सर्वदा सर्वावस्था में पालन की जाती है, वही श्रेष्ठ है तथा महाव्रत कहलाती है। योगी जन इसी का पालन करते हैं।

जहाँ तक गृहस्थों का प्रश्न है, उनके लिए महाव्रत संभव न होने के कराण वे आंशिक रूप में, क्रमपूर्वक, अधिकाधिक कठोर व्रत स्वीकार कर अहिंसा का पालन करते हैं। जान-बूझ कर किसी भी प्राणी की शरीर से हिंसा नहीं करूँगा, ''भले ही हिंसा करवानी पड़े या अनुमोदन करना पड़े अथवा वाणी से कटु वचन बोलना पड़े।'' इस प्रकार का व्रत अणु व्रत कहलाता है। वस्तुत: इस प्रकार के अपवादयुक्त व्रत तो दुर्बल मानवों के लिए राहत प्रदान करने जैसे हैं एवं क्रमश: हिंसावृत्ति को त्याग कर पूरी तरह अहिंसक बनाने की दिशा में प्रथम कदम मात्र हैं। जाति, देश कालादि के भी अपवाद उपर्युक्त रीति से स्वीकार किये गये हैं।

अहिंसा-साधना की समस्याएँ – जैसाकि प्रारम्भ में कहा जा चुका है, अन्य नियमों की तरह अहिंसा के भी दो रूप हैं; एक साध्य और एक साधन। साध्य के रूप में अहिंसा का अर्थ है – सर्वप्राणियों में आत्मा का दर्शन करना। सत्य का अर्थ है – आत्मा ही एकमात्र सत्य है, जगत् मिथ्या है,

इस सत्य में प्रतिष्ठित होना। ब्रह्मचर्य का अर्थ है – सदा ब्रह्मस्वरूप में विचरण करना इत्यादि। लेकिन साधन के रूप में इन तीनों के कई स्तर हैं एवं अन्य साधनों की तरह इनकी भी समस्याएँ हैं। पहली समस्या तो यह है कि सभी साधनों का लक्ष्य एक होते हुए भी सभी के लिए एक साधन संभव नहीं है। कोई सत्य को साधना के रूप में स्वीकार कर सकता है, कोई अहिंसा पर बल दे सकता है अथवा कोई ब्रह्मचर्य को लेकर आगे बढ़ सकता है। सभी साधन परस्पर सम्बन्धित अवश्य हैं लेकिन भिन्न-भिन्न साधक भिन्न-भिन्न साधनों पर बल देते हैं। यही नहीं, पात्र, देश और काल के अनुसार भी परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिये जिस गरीब व्यक्ति को अपने परिवार के भरण-पोषण के लिये, रोजी-रोटी के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ रहा है, जिसे अपने तथा अपने परिवार के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्षरत रहना पड़ रहा है, उसके लिए अहिंसा परम धर्म एवं चरम लक्ष्य होते हुए भी तात्कालिक साधन नहीं हो सकता। जिस देश को सदा बाहरी शत्रुओं के आक्रमण का भय बना रहता हो, उसके लिये भी अहिंसा का सम्पूर्ण पालन संभव नहीं है। दुर्बल-बलहीन व्यक्ति को अहिंसा का आदर्श और अधिक दुर्बल बना सकता है। क्षमा वीरस्य भूषणम्। अहिंसा उच्चतम या परमादर्श है, लेकिन समाज में कभी भी उच्चतम आदर्श का आचरण करनेवाले विरले व्यक्ति ही होते हैं। व्यावहारिक स्तर पर, दैनन्दिन जीवन के स्तर पर निम्नतर आदर्श को स्वीकार करना होता है, अन्यथा सारे समाज का पतन होता है।

सभी साधनों की दूसरी समस्या यह है कि साधन ही साध्य बन जाते हैं। उन पर इतना अधिक बल दिया जाने लगता है कि लोग लक्ष्य को भूल जाते हैं। यह दुराग्रह एवं कट्टरवादिता का रूप ले लेता है।

इससे सम्बन्धित एक और समस्या है । सभी साधनों की तरह अहिंसा के भी दो पक्ष हैं 'स्थूल शारीरिक अथवा भौतिक तथा सूक्ष्म भावरूप, अथवा मानसिक।' कालान्तर में स्थूल पर अधिक बल दिया जाने लगता है, क्योंकि वह सरल होता है, आसानी से समझ में आता है, तथा प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उसकी सामाजिक मान्यता होती है तथा प्रशंसा भी प्राप्त होती है। अहिंसा के सम्बन्ध में भी यही बात है। मानसिक या भाव-अहिंसा अधिक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अधिक कठिन होती है। किसी प्राणी की हत्या नहीं करना आसान है लेकिन किसी के प्रति द्वेष-भाव पूरी तरह त्यागना कठिन है। अत: अहिंसा भी कालान्तर में प्राणी-हत्या नहीं करना, निरामिष भोजन त्याग आदि में ही परिवर्तित होकर रह जाती है। मैत्री-भाव बढ़ाने को गौण महत्त्व मिलने लगता है। यही नहीं, साधना का नकारात्मक पक्ष प्रबल हो जाता है। दूसरों के कष्ट को लाघव करना भी अहिंसा का अंग है, यह बात गौण हो जाती है।

रामकृष्ण-विवेकानन्द–भावधारा में अहिंसा – वस्तुत: सभी अवतारी महापुरुष प्रेम और अहिंसा को शाश्वत संदेश के रूप में अपने जीवन द्वारा प्रदर्शित करने एवं उसका उपदेश देने के लिये ही आते हैं। श्रीरामकृष्ण भी इसके अपवाद नहीं हैं। श्रीरामकृष्ण की जीवनी पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक ब्रह्मज्ञ पुरुष थे तथा अत्यन्त स्वाभाविक रूप से ब्रह्मात्मैकत्व में प्रतिष्ठित थे। अहिंसा के सन्दर्भ में वे पारमार्थिक अहिंसा में सर्वदा प्रतिष्ठित थे। गले के कैन्सर से पीड़ित हो, जब वे मुँह से कम खा-पी रहे थे, तब भी उन्हें यह अनुभूति थी कि वे असंख्य भक्तों के मुँह से खा रहे हैं। यह तभी संभव है, जब वे समस्त प्राणियों में स्वयं को अवस्थित देखें। एक बार उन्होंने स्वयं भोजन करके अपने अनेक भूखे भक्तों की क्षुधा निवृत्ति की थी। यह भी तभी संभव है जब वे स्वयं को सभी की देहों में अवस्थित देखें। एक मांझी के दूसरे मांझी पर कराघात करने पर स्वयं उसका अनुभव करना तथा घास पर चल रहे व्यक्ति के पदाघात को स्वयं के सीने पर अनुभव करना भी श्रीरामकृष्ण के पारमार्थिक अहिंसा में प्रतिष्ठित होने के दृष्टान्त हैं। वे सर्वत्र, यहाँ तक कि वनस्पति में भी आत्मा का दर्शन करते थे, अत: एक अवस्था ऐसी आयी थी, जब वे हरी दूब पर पैर नहीं रख सकते थे तथा उसे बचाकर सूखी जमीन पर पैर रख-रख कर चलते थे।

जहाँ तक भाव-अहिंसा अथवा मानसिक अहिंसा का प्रश्न है, इसमें भी श्रीरामकृष्ण पूर्ण प्रतिष्ठित थे। उनका जन्म ही जगत के कल्याण के लिए हुआ था। दुखी, बद्ध, आर्त प्राणियों के लिए वे करुणा से पूर्ण थे तथा उनका समग्र जीवन दूसरों के कष्ट लाघव करने तथा उन्हें मुक्ति प्रदान करने में ही बीता था। सुखी एवं पुण्यात्माओं के प्रति उनके मन में भी मुदिता एवं मैत्री का भाव था। वे उनके दर्शन करके आनन्दित होते थे तथा उनसे मैत्री स्थापित करते थे। केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं अन्यान्य मनीषियों एवं

सन्त पुरुषों के दर्शन करने वे स्वयं गये थे। दुष्टों के प्रति उनके हृदय में उपेक्षा का भाव था। जिस ब्राह्मण पुजारी ने उन्हें लात से मारा था, उसे किसी प्रकार हानि न हो, यह सोचकर उन्होंने वह बात श्रीमथुरानाथ विश्वास से नहीं कही। यहाँ तक कि श्रीरामकृष्ण ने किसी की निन्दा तक नहीं की। प्रेम कभी दोष नहीं देखता। किसी की निन्दा करना अथवा उसके दोष देखना प्रेम का लक्षण नहीं, बल्कि ईर्ष्या एवं स्वयं की उच्चाभिलाषाओं का फल है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि किसी का दोष नहीं देखना चाहिए।

भय अहिंसा का विरोधी है। अहिंसक सभी प्राणियों को अभय प्रदान करता है और स्वयं भी सभी से निर्भय हो जाता है। क्योंकि उसकी यह मान्यता होती है कि सभी में एक ही आत्म सत्ता है। व्यावहारिक स्तर पर भय पर विजय पाने का प्रयत्न करना अहिंसा-साधना का एक अंग है। श्रीरामकृष्ण इसका उपदेश दिया करते थे। मास्टर महाशय एक बार नाव के डाँवाडोल होने पर भयभीत होकर उतर गये थे। वे अपने परिवार वालों से भी भयभीत रहते थे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें इसे त्यागने का उपेदश दिया था।

माँ सारदा तो प्रेम व अहिंसा की जीवन्त प्रतिमूर्ति ही थीं, ''कोई पराया नहीं, सभी अपने हैं, सभी को अपना बनाना सीखो।'' माँ सारदा का यह उपदेश अहिंसा और प्रेम का ही उपदेश है। 'किसी का दोष न देखो' यह उनका सबसे महत्त्वपूर्ण संदेश अहिंसा का आधार है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार भी अहिंसा सर्वोपरि है। वे अहिंसा के महत्त्व को समझने के लिए पवहारी बाबा का दृष्टान्त दिया करते थे, जिनके लिये साँप, चोर आदि सभी परमात्मा के ही रूप थे। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि जो पूर्ण नैतिक है, वह किसी प्राणी या व्यक्ति की हिंसा नहीं कर सकता। जो मुक्त होना चाहता है, उसे अहिंसक बनना होगा। जिसमें पूर्ण अहिंसा का भाव है, उससे बढ़कर कोई शक्तिशाली नहीं है। स्वयं स्वामीजी ऐसी स्थिति में अवस्थित थे, जहाँ से वे संसार के समस्त प्राणियों के कष्टों का अनुभव कर सकते थे। वे संसार के उद्धार के लिये बार-बार जन्म लेने के लिये भी प्रस्तुत थे। ○○○

प्रेरक लघुकथा

तीरथ को जाइए, करके हृदय साफ

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

एक व्यक्ति ने संत जुन्नैद से कहा, ''हज करने की इच्छा पूरी होने से मैं बहुत खुश हूँ।'' इस पर जुन्नैद ने पूछा, ''जब तुम घर से निकले थे, तब क्या तुम खुदा की याद में मग्न थे?'' ''नहीं, उस समय हज जाने की खुशी में मैं मस्त था।'' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया। तब उन्होंने एक साथ कई प्रश्न किए – ''जब तुम अपने मकान से दूर गए थे, तो क्या उतना ही अपने अपराधों से दूर हुए थे? जब तुमने अपने कपड़े उतारकर हज के कपड़े पहने थे,तब क्या बुराइयों को उतारकर फेंका था? जब तुम इरफ़ात की पहाड़ी पर खड़े थे, तब क्या अल्लाह के चिन्तन में डूबे थे? जब तुमने काबे के चक्कर लगाए, तब क्या तुमने अल्लाह की कृपा का बोध किया था? जब तुम कुरबानी की जगह पर पहुँचे, तब क्या तुमने अपनी इच्छाओं की कुरबानी दी थी? जब तुमने कंकरियाँ फेंकीं, तब क्या तुमने बुरे विचारों को फेंका था?'' वह व्यक्ति 'नहीं, नहीं' कहता गया। तब संत ने कहा, ''तब खुदा को तुम्हारा हज करना कैसे स्वीकार होगा? सम्प्रदाय का उद्देश्य सच्चे दीन को खुदा की ओर बढ़ाना होता है। ऐसे समय मन-मस्तिष्क को साफ रखना होता है। सम्प्रदाय के द्वारा जो व्यक्ति सम्प्रदाय की रूह – आत्मा तक जाता है, वही अल्लाह को पहचान सकता है। तीरथ तक जाते समय हृदय का दरवाजा पूरी तरह धार्मिक होना चाहिए । इससे हृदय की सफाई होती है, तब मक्का जाने का उद्देश्य पूरा होता है।'' उस व्यक्ति की समझ में आ गया कि हज की यात्रा केवल 'हाजी' की उपाधि प्राप्त करने के लिये नहीं है, बल्कि हृदय को साफ करने के लिए है।

परम सत्ता से जुड़ने के लिए सांसारिकता की बातों को भूलकर मन को उस जगन्नियन्ता पर केन्द्रित करके उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। तभी तीर्थाटन की सार्थकता सिद्ध होती है। उपासना, पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, स्वाध्याय, तीर्थयात्रा, ये सब भक्ति मार्ग की विधियाँ हैं। इन्हें करते समय चित्त का निर्मल रहना आवश्यक है। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (७९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रेमेशानन्द

४-८-१९६१

प्रश्न – ठाकुर ने तो काशी में विश्वनाथजी और वृन्दावन में श्रीकृष्ण की सभी लीलाओं को अपनी आँखों से देखा था। इसका रहस्य क्या है?

महाराज – उस समय वे कालातीत हो गए थे। उनके लिये अतीत, वर्तमान, भविष्य एक हो गए। 'वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि... ।'

सेवक ने एक फटा कपड़ा बेकार समझकर बाहर फेंक दिया। देखते ही महाराज बोले – किसी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। एक व्यक्ति द्वारा झाड़ू फेंकने के कारण माँ ने कहा था, झाड़ू होने के कारण उसे तुच्छ समझकर फेंकते हैं क्या? असली बात है कि इसी तरह मन-ही-मन लापरवाही की मानसिकता बनती जाती है। तब बड़े कार्यों में भी गम्भीरता का अभाव होता जाता है।

प्रश्न – देह-मन-बुद्धि का बन्धन कैसे टूटता है?

महाराज – जब किसी विषय को एकाग्र होकर पढ़ते हो, तो क्या मच्छर के काटने का अनुभव होता है? फेफड़ों का क्रियाकलाप क्या पता चलता है? वैसे ही मन जब 'आत्मसंस्थं मन: कृत्वा' करके (इष्ट चिन्तन में) केवल निश्चयात्मिका बुद्धि में स्थित हो जाता है, तब अन्य क्रिया-कलापों का कुछ पता नहीं चलता। यह धारणा की अवस्था है। इस अवस्था में स्थित रहते-रहते एक दिन सच्चा ज्ञान हो जाता है, तब मैं और देह पृथक् हो जाते हैं। यहाँ से उतरते समय क्रमश: बुद्धि से मन, मन से प्राण, तत्पश्चात् हम शरीर पर आते हैं, किन्तु यह सब इतनी शीघ्रता से होता है कि इसका कुछ पता नहीं चलता।

०७-८-१९६१

प्रश्न – 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' – इस बात की ठीक धारणा नहीं हो रही है।

महाराज – हम लोगों का लक्ष्य है – 'आत्मन: मोक्ष:', किन्तु मुक्ति का वह मार्ग लिया गया, जिससे जगत् का भी उपकार हो। इसीलिए तो स्वामीजी ने इस बार इस प्रकार के सेवा-कार्य का प्रवर्तन किया है। यह कार्य किस प्रकार का है जानते हो? मान लो, तुम बहरमपुर जा रहे हो। मैंने कहा – अरे तुम तो जा रहे हो, तो रास्ते में अमुक व्यक्ति को यह समाचार दे देना ! यह हुआ 'जगद्धिताय'।

गीता दो प्रकार के लोगों को आकर्षित करती है। कवि और साहित्यकार इसकी भाषा-शैली के सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं। वैज्ञानिक मानसिकतावाले लोग इसका विज्ञानसम्मत व्यावहारिक रूप देखकर मुग्ध होते हैं। एक व्यक्ति जीव-विज्ञान, शरीर-विज्ञान पढ़कर आया था, वह बड़े अच्छे ढंग से सांख्य – पुरुष-प्रकृति, सृष्टि समझता है।

प्रश्न – ठाकुर भी तो गीता की तरह कितनी बातें कह गए हैं, किन्तु देश में तो कोई परिवर्तन नहीं दीख रहा है?

महाराज – अभी हमारे देश का गौरवशाली काल चल रहा है, किन्तु सब लापरवाह हैं, उपेक्षा कर रहे हैं। कोई नहीं जानता है कि किसका कैसे मंगल होगा। सुसम्बद्ध, व्यवस्थित जीवन नहीं है। संन्यास क्या है, ब्रह्मचर्य क्या है, कोई बता नहीं पाता। यदि कोई एक मास तक ब्रह्मचर्यपालन करे – अर्थात् शक्ति-संरक्षण करे, बाहरी विषयों से अनुत्तेजित होकर भीतर डूब जाने का प्रयास करे, तब तो कुछ हो। संन्यास का अर्थ है सीधा एक मार्ग !

एक व्यक्ति आया था, क्या चेहरा ! क्या देह-गठन ! बहुत शुभ संस्कार लेकर जन्मा है। देह, प्राण, मन, बुद्धि चारों ही अति उत्तम हैं, किन्तु बचपन से ही धर्म निरपेक्ष चीजों को लेकर रहता है। मेरे साथ मेल-जोल के बाद भी घनिष्ठता नहीं हुई। दो-एक पुस्तकें पढ़ने से कुछ नहीं होता, पत्राचार से भी कुछ नहीं होता। पास रहकर एक सौ बार

कहने-सुनने से मन में धारणा होती है।

हमलोगों के संघ में जो लोग भी आते हैं, ठाकुर के नाम से आते हैं। किसी प्रमुख व्यक्ति के रहने पर सबको स्नेह देकर एकसाथ रखने से बहुत उन्नति होती। ठाकुर तो समष्टि रूप में आए हैं, उनका आना व्यर्थ नहीं होगा। चैतन्यदेव के आगमन के बाद चार सौ वर्षों तक जागतिक क्षेत्र में कैसी प्रगति हुई ! ठाकुर के आगमन से भी उसी तरह देशव्यापी जागरण होगा। एक मनुष्य की उन्नति होने में ही कितना समय लगता है ! एक राष्ट्र के संदर्भ में तो अधिक समय लगेगा ही। सभी तमोगुण से रजोगुण में आ गए हैं। इसीलिए सर्वत्र थोड़ा अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित प्रतीत हो रहा है। इसमें से ही नवीन भारत का उद्भव होगा।

रामकृष्ण मिशन विश्वव्यापी संस्था है। संसार में इसकी बहुत प्रसिद्धि होगी ! सभी इसका अनुकरण करेंगे। उससे ही संसार की उन्नति होगी। ठाकुर आए हैं न ! वर्तमान अवस्था देखकर निराशा का भाव आने पर 'हिन्दू धर्म और श्रीरामकृष्ण' नामक पुस्तक पढ़ना। स्वामीजी दैवी भविष्यवाणी कर गए हैं। हम लोग इतने पुराने घाघ हैं, हमलोगों को ही संशय होता है, यह भी ठीक ही है। भारत ही विश्व का केन्द्र होगा, निश्चय ही होगा।

२६-८-१९६१

स्वामीजी के साम्यवाद की चर्चा हो रही थी। प्रसंगवश महाराज ने कहा – जाति-भेद समाप्त हो जाएगा, इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी शूद्र हो जाएँगे। इसका अर्थ है, सबको ऊपर उठाकर ब्राह्मण के समान निष्ठा, क्षत्रिय के समान तेज, साहस से पूर्ण करना। अत: यदि एक सम्भ्रान्त व्यक्ति के बच्चे के लिये एक शिक्षक की जरूरत है, तो चांडाल के लिये दस शिक्षकों की जरूरत होगी।

प्रश्न – ठाकुर और स्वामीजी की शिक्षा का मूल भाव क्या है?

महाराज – ठाकुर कहते हैं, जैसी भी अवस्था में क्यों न रहो, अभी ईश्वरप्राप्ति के प्रयत्न में लग जाओ। स्वामीजी कहते हैं, जिस स्थिति में भी रहो, तमोगुण से आच्छन्न मत रहो। प्रयास करो, आगे बढ़ने का प्रयत्न करो । विकास हो, अभ्युदय हो। जो जिस तरह की भी स्थिति में है, वहीं से उसकी प्रगति हो।

एक मजेदार घटना बताता हूँ। ठाकुर ने कहा है कि हम लोग अधिकांशत: बाजे के ढोल की आवाज मुख से ही बजा सकते हैं, किन्तु उसे हाथ से बजाना कठिन है। एक व्यक्ति विचार करता था कि वह देह-मन नहीं है। एक दिन वह स्वप्न देख रहा है कि उसे फाँसी देने के लिये ले जाया जा रहा है। वह उस समय भी 'देह और मन नहीं हूँ', ऐसा कहकर खूब प्रशंसा कर रहा है। किन्तु जैसे ही फाँसी पर लटकाया जाता है, तत्क्षण ही वह चीत्कार करता है और नींद टूट जाती है। हम लोगों की भी ठीक ऐसी ही स्थिति है – **''कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या।''**

२८.८.१९६१

प्रश्न – एक व्यक्ति अत्यन्त पवित्र और नैतिक है, किन्तु वह ईश्वर को नहीं मानता है और दूसरा एक व्यक्ति है, जो ईश्वर को तो मानता है, किन्तु उतना पवित्र नहीं है। इन दोनों में कौन अच्छा है?

महाराज – कोई व्यक्ति सदाचारी, स्पष्टवादी हो सकता है, भले ही वह न्यायाधीश हो, मजिस्ट्रेट हो अथवा विद्वान हो, उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। हो सकता है कि वह सत्यवादी, जितेन्द्रिय, परोपकारी सब कुछ हो, किन्तु यदि वह अपनी देह, मन, बुद्धि के सम्बन्ध में सचेत नहीं रहता है, तो वह अकस्मात् पूर्व संस्कारों की प्रेरणा अथवा किसी स्वार्थसिद्धि के वशीभूत होकर कोई भी खराब कार्य कर सकता है। मन में किसी एक बड़ी वस्तु के साथ आसक्त रहना कि मैं अमुक वंश का हूँ, मैं भगवान का चिन्तन करता हूँ, इस प्रकार की एक दृढ़ इच्छाशक्ति रहनी चाहिए। जैसे – 'हजारों कठिनाइयों में पड़कर भी मैं झूठ नहीं बोलूँगा, चोरी नहीं करूँगा। इस प्रकार का एक आदर्श चाहिए। **(क्रमशः)**

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।

जो निन्दा-स्तुति को समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में ही सदा सन्तुष्ट रहता है और रहने के स्थान में ममता और आसक्ति से रहित है – वह स्थिरबुद्धि, भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है ।

– गीता, १२.१९

उदार व्यवहार

स्वामी मेधजानन्द

इस समय आप यह जो विवेक ज्योति पत्रिका पढ़ रहे हैं, जब यह शुरू हुई थी, तब इसके प्रचार और सदस्य बनाने के लिए आश्रम के साधु-स्वयंसेवक विभिन्न स्थानों में जाते थे। एक बार आश्रम के एक साधु और भक्त किसी दुकानदार के पास गए और विवेक-ज्योति की पत्रिका दिखाकर उनसे सदस्य बनने की प्रार्थना की। उस दुकानदार ने उनकी भर्त्सना करते हुए पत्रिका फेंक दी। वे साधु तो बिना कोई प्रतिक्रिया व्यक्त कर चले गए, किन्तु उन भक्त को भीतर-ही-भीतर उस दुकानदार पर बहुत क्रोध आया।

कालान्तर में ये ही भक्त एक पार्टी के विधायक बने। संयोगवश वे दुकानदार किसी काम के लिए इन विधायक के पास आए। दुकानदार ने उन्हें पहचाना नहीं, किन्तु उन विधायक-भक्त ने इस दुकानदार को पहचान लिया और पूछा, ''क्या आपको लगता है कि आपकी और मेरी पहले कहीं मुलाकात हुई है?'' उस दुकानदार ने कहा, ''नहीं।'' उन विधायक-भक्त ने कहा कि थोड़ा याद कीजिए तो। जब वे नहीं पहचान पाए, तो उन भक्त ने कहा, ''आपको याद है कि कुछ साल पहले आपकी दुकान पर किसी साधु के साथ एक व्यक्ति पत्रिका के लिए चन्दा माँगने आया था और आपने उनकी भर्त्सना की थी।'' उसने कहा, ''हाँ, याद है।'' उन भक्त ने कहा, ''वह दूसरा व्यक्ति मैं ही हूँ।'' वह दुकानदार बहुत ही लज्जित हुआ और उसने अपने अनुचित व्यवहार के लिए क्षमा माँगी।

हम सबके जीवन में ऐसे छोटे-मोटे बहुत प्रसंग आते हैं, जिससे हमारे चरित्र की उदारता प्रकट होती है। जैसेकि कोई अजनबी हमसे किसी स्थान का पता पूछता है और हम उसको सही मार्ग बता देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उसे गन्तव्य स्थान तक भी पहुँचा देते हैं। चरित्र की उदारता व्यक्ति के व्यवहार से परिलक्षित होती है। व्यक्ति अपने उदार व्यवहार द्वारा समाज के सभी वर्गों पर अपनी छाप छोड़ता है। किन्तु इस व्यवहार में कृत्रिमता और दिखावटीपना नहीं होना चाहिए। वह सहृदयता से पूर्ण होना चाहिए।

हम जिस व्यवहार की दूसरों से अपेक्षा करते हैं, वैसा ही व्यवहार हमें दूसरों से करना चाहिए। समाज के किसी भी वर्ग का कोई भी व्यक्ति क्यों न हों, प्रत्येक के साथ हमारा आचरण गरिमापूर्वक होना चाहिए। बहुत बार हम उच्च पदस्थ अथवा धनाढ्य व्यक्तियों के साथ ही आदरपूर्वक व्यवहार करते हैं, किन्तु समाज के निम्न स्तरीय व्यक्तियों के साथ हमारा व्यवहार तिरस्कारपूर्ण होता है।

यह कहा जाता है कि व्यक्ति का व्यवहार ही उसके चरित्र का दर्पण है, किन्तु बहुत बार किसी के बाह्य व्यवहार से ठीक धारणा नहीं हो पाती और हम धोखा खा जाते हैं। हनुमानजी जब संजीवनी बूटी लाने चले, तब मार्ग में उन्होंने देखा कि एक आश्रम में कोई ऋषि श्रीराम के गुणगान कर रहे हैं । हनुमानजी को पहले समझ नहीं आया और वे उनकी बातों में आ गए, किन्तु जब उन्हें बताया गया कि वह ऋषि के रूप में कालनेमि राक्षस है, तो उन्होंने उसका वध कर दिया । इसलिए लेन-देन इत्यादि व्यवहार में हमेशा सावधानी बरतनी चाहिए ।

एक ही समय एक ही बात दो अलग-अलग व्यक्ति कहते हैं, तो उसका प्रभाव भी भिन्न होता है। कड़वी बात भी यदि मधुर शब्दों में बोली जाए, तो उसका प्रभाव हितकर होता है। इसके विपरीत यदि अच्छी बात को रुक्षता से बोला जाए, तो उसका परिणाम विपरीत होता है। गाँवों में यदि कोई नेत्रहीन होता है, तो उसे अन्धा न कहकर सूरदास कहते हैं। ऐसे ही विकलांग व्यक्तियों को हम दिव्यांग कहते हैं। हमारी धरोहर भी हमें यही सिखाती है –

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः ।।

– सत्य बोलना चाहिये, मधुर बोलना चाहिये, कटु सत्य नहीं बोलना चाहिये । मधुर किन्तु असत्य नहीं बोलना चाहिये – यही सनातन धर्म है ।

कोई कितना भी दुष्ट व्यक्ति क्यों न हो, उसके सामने यदि एक अबोध शिशु आ जाए, तो उस समय के लिए उसकी दुष्ट प्रकृति चली जाती है। शोक-सन्तप्त व्यक्ति को सान्त्वना भरे शब्द कहने से, वह उस समय के लिए अपना शोक भूल जाता है । सद्व्यवहार से व्यक्ति स्वयं शान्ति और धन्यता का अनुभव तो करता ही है, साथ ही दूसरों को भी सुखी करता है। ○○○

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (११)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक शृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

अवसादग्रस्त तथा उदास मन के द्वारा भला प्रेम कैसे किया जा सकता है? यदि ऐसे लोग प्रेम की बातें करें, तो वह दिखावा मात्र है; वे तो दूसरों को कष्ट देना चाहते हैं। कट्टरपन्थियों की ही बात लो – ये लोग लम्बे-लम्बे चेहरे लटकाये रहते हैं, परन्तु उनकी सारी धार्मिक गतिविधियाँ वाणी तथा कर्मों के द्वारा दूसरों से लड़ने-झगड़ने तक ही सीमित होती हैं। उनके विगत कार्यों का इतिहास देखो और कल्पना करो कि यदि उन्हें आजादी दे दी जाय, तो वे क्या कर डालेंगे! सत्ता की प्राप्ति के लिये वे सारे संसार को खून की नदियों से आप्लावित कर डालेंगे। सत्ता की पूजा और अपने लटके हुए चेहरों के द्वारा वे अपने हृदय से प्रेम का नामो-निशान तक मिटा डालते हैं। अत: जो व्यक्ति सदैव अपने को दुखी मानता है, वह कभी ईश्वर तक नहीं पहुँच सकता। सदा सोचते रहना कि 'मैं कितना दुखी हूँ' – धर्म नहीं, अपितु आसुरी भावना है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना बोझ स्वयं ढोना है। यदि तुम दुखी हो, तो सुखी होने की चेष्टा करो, अपने दुखों पर विजय पाने की चेष्टा करो। प्रसन्नचित्त व्यक्ति ही अध्यवसायी होता है। दृढ़चित्त व्यक्ति ही हजारों कठिनाइयों के बीच से अपना मार्ग बना लेता है। और इस मायाजाल को काटकर अपना मार्ग निकाल लेना सर्वाधिक कठिन कार्य है। यह कार्य कुछ विराट् इच्छाशक्ति से सम्पन्न लोगों के द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

बलहीन को ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। अत: दुर्बल कदापि मत बनो। तुम्हारे अन्दर असीम शक्ति है, तुम्हें शक्तिमान बनना है। अन्यथा तुम किसी भी वस्तु पर विजय कैसे प्राप्त करोगे? शक्तिशाली हुए बिना तुम ईश्वर को कैसे प्राप्त कर सकोगे?

तो भी कुछ काल के लिये अत्यधिक आमोद-प्रमोद से बचो। अतिशय आमोद हमें गम्भीर चिन्तन के अयोग्य बना देता है। ऐसी अवस्था में मन कभी शान्त नहीं होता और अस्थिर-चंचल बना रहता है। अतिशय आमोद के बाद दुख भी अवश्य आता है। हँसी और आँसुओं के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य बहुधा एक अति से दूसरी अति की ओर भागता है। मन को आनन्दयुक्त, परन्तु शान्त बनाओ। इसे कभी अतियों के पीछ मत भागने दो, क्योंकि प्रत्येक अति के बाद उसकी प्रतिक्रिया भी आती है।[१] इससे मानसिक शक्ति का निरर्थक क्षय होता है। इच्छाशक्ति जितनी ही प्रबल होगी, मनुष्य उतना ही अधिक भावनाओं के द्वारा विचलित नहीं होगा। अत्यधिक आमोद उतना ही बुरा है, जितना कि गम्भीर उदासी का भाव; और हर तरह की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ तभी सम्भव होती है, जब मन सामंजस्यपूर्ण सन्तुलन के द्वारा स्थिर और शान्त रहता है।[२]

सर्वप्रथम तुम्हें अच्छे पुष्टिकर भोजन के द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाना होगा – तभी मन बलवान होगा। मन तो शरीर का ही एक सूक्ष्म अंश है। मन और वाणी में खूब दृढ़ता लाओ – 'मैं दीन हूँ', 'मैं हीन हूँ' – कह-कहकर स्वयं को दीन-हीन मत बनाओ। अष्टावक्र-संहिता (१.११) में कहा गया है – "यदि कोई स्वयं को मुक्त समझता है, तो वह मुक्त हो जाता है; यदि कोई स्वयं को बद्ध समझता है, तो वह बद्ध ही रह जाता है। 'जैसी मति, वैसी गति' – यह प्रचलित कहावत बिल्कुल सत्य है।"[३] जागतिक तथा पारमार्थिक – दोनों ही क्षेत्रों में यह सत्य है। मुझे तो लगता है कि स्वयं को दीन-हीन तथा मूर्ख समझना एक पाप तथा अज्ञान का लक्षण है। जो लोग सर्वदा निराश और हताश रहते हैं, उनसे कोई कार्य नहीं हो सकता। वे बारम्बार रोते-चिल्लाते हुए जन्म और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।[४]

साधना के लिये बैठते समय सोचो कि तुम्हारा शरीर

१. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ९, पृ. ११

२. वही, खण्ड ४, पृ. ४२

३. मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किम्वदन्तीह सत्येयं या मति: सा गतिर्भवेत्॥

४. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ. ९६

सबल और स्वस्थ है। शरीर ही तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ सहायक है। इसे वज्र के समान सबल समझो और सोचो कि तुम इस शरीर की ही सहायता से यह जीवन-समुद्र पार कर लोगे। दुर्बलों को कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। सारी दुर्बलताओं को फेंक डालो। अपने शरीर से कहो कि वह खूब बलवान है, मन से कहो कि वह अनन्त शक्तिमान है। स्वयं पर प्रबल विश्वास लाओ और आशावादी बनो।[५]

उपनिषद् ने हमें दो शब्द दिये – पहला बौद्धिक ज्ञान और दूसरा अनुभूति। तात्पर्य यह कि बौद्धिक स्वीकृति अनुभूति के अधीन है; और अनुभूति [ज्ञान] उसके परे है। अतएव बौद्धिक स्वीकृति ही पर्याप्त नहीं है।

हर व्यक्ति कहेगा कि यह सिद्धान्त ठीक है, परन्तु उसकी अनुभूति तो हुई नहीं है; उसे इसकी अनुभूति करनी है। हम सभी कह सकते हैं कि यह इन्द्रजाल है; परन्तु यह मान लेना ही अनुभूति नहीं है। अनुभूति तो तब आयेगी जब – चाहे वह क्षण भर के लिए ही क्यों न हो – यह सम्मोहन टूट जायगा। यह एक झलक के रूप में आयेगी; इसे आना ही चाहिये। यदि तुम चेष्टा करो, तो यह अनुभूति आ जायेगी।

जब यह सम्मोहन [मायाजाल] लुप्त हो जायगा, तो उसके साथ दीपक बुझने के समान नर-नारीत्व तथा देहात्म का सारा बोध भी चला जायगा। उसके बाद तुम्हारा क्या होगा? यदि तुम्हारे कर्म का कुछ अंश बचा है, तो तुम्हारे लिये यह संसार फिर लौट आयेगा – परन्तु पूर्ववत् प्रबलता के साथ नहीं। अब तुमने इसकी वास्तविकता को समझ लिया है; अब तुम बन्धन में नहीं पड़ोगे। जब तक तुम्हारी आँखें तथा कान हैं, तब तक तुम देखोगे या सुनोगे – परन्तु उनमें पहले जैसी प्रबलता नहीं होगी।

मैंने मृग-मरीचिका के बारे में काफी कुछ पढ़ रखा था; परन्तु केवल चार वर्षों पूर्व ही मुझे वह देखने को मिली। उन दिनों मैं पश्चिमी भारत का भ्रमण कर रहा था। एक संन्यासी के रूप में मैं पैदल ही चल रहा था। मैं प्रतिदिन देखता कि सामने सुन्दर-सुन्दर झीलें हैं और उनके तटों पर स्थित वृक्षों के प्रतिबिम्ब पड़ रहे हैं। यह सारा दृश्य मानो हवा में झिलमिलाता रहता। मैं पक्षियों को उड़ते तथा पशुओं को दौड़ते हुए भी देखता। मैं प्रतिदिन ही इसे देखता और सोचता कि यह कैसा सुरम्य अंचल है, परन्तु जब मैं एक गाँव में गया, तो देखा कि वहाँ सर्वत्र बालुका-राशि बिखरी हुई है। मैंने सोचा – यह कैसे हुआ!

एक दिन मुझे बड़ी प्यास लगी और मैंने सोचा कि क्यों न मैं एक झील में से थोड़ा-सा पानी पी लूँ। परन्तु जब मैं उसके पास गया, तो वह लुप्त हो गयी; और क्षण भर में ही मेरे सामने यह विचार कौंध गया – 'अरे, यह तो वही मरीचिका है, जिसके बारे में मैं आजीवन पढ़ता रहा हूँ।' परन्तु विस्मय की बात यह थी कि मैं महीने-भर से मरीचिका में ही चल रहा था और कभी पहचान नहीं सका था कि यह एक मरीचिका है – और क्षण-भर में वह लुप्त भी हो गयी थी। मुझे यह जानकर बड़ा आनन्द हुआ कि यही वह मरीचिका है, जिसके बारे में मैं आजीवन पढ़ता रहा हूँ।

अगले दिन मैंने फिर उस झील को देखा, परन्तु तत्काल मेरे मन में आया कि – 'यह तो एक मरीचिका है।' उस पूरे महीने मैं मरीचिका को देखता रहा, परन्तु वास्तविकता तथा मरीचिका में भेद नहीं कर सका था। परन्तु उस क्षण भर के दौरान मैं सब कुछ समझ चुका था।

उसके बाद से मैं जब भी कोई मरीचिका देखता, तो कह उठता – यह एक मरीचिका है; और उससे भ्रमित नहीं होता। इस संसार के साथ भी वैसा ही होगा; जब एक बार यह सब कुछ तुम्हारे सामने से लुप्त हो जायगा, तो उसके बाद, यदि तुम जीवित रहकर अपने बचे हुए कर्मों का भोग करो, तो भी तुम धोखा नहीं खाओगे।

दो पहियोंवाली एक गाड़ी लो। अब मान लो, मैं उसकी धुरी से एक पहिये को काट दूँ। दूसरा पहिया अपने पुराने वेग के कारण थोड़ी देर दौड़ेगा और उसके बाद गिर पड़ेगा। तो शरीर एक पहिया है और आत्मा दूसरा। ये दोनों भ्रान्ति की धुरी से जुड़े हुए हैं। ज्ञान की कुल्हाड़ी से धुरी को काट दिया जाता है और आत्मा तत्काल ठहर जाती है – इन समस्त मिथ्या सपनों का परित्याग कर देती है।

परन्तु शरीर के साथ पुराना वेग है अत: वह कर्म करते हुए थोड़ा-सा दौड़ेगा और उसके बाद गिर पड़ेगा। केवल भले कर्मों का ही वेग रहता है और वह शरीर केवल सत्कर्म ही कर सकता है। यह चेतावनी इसलिए दी जा रही है, ताकि कहीं तुम किसी ढोंगी को मुक्तात्मा न समझ बैठो। एक मुक्तात्मा के लिए दुष्कर्म करना असम्भव होगा। इसलिए तुम्हें धोखा नहीं खाना चाहिये।

मुक्त हो जाने के बाद यह सारा सम्मोहन लुप्त हो

५. वही, खण्ड १, पृ. ५७

जाता है और तुम वास्तविकता तथा मरीचिका का भेद समझ चुके होते हो। अब यह [मरीचिका] तुम्हारे लिए बन्धन का कारण नहीं हो सकती। अब अत्यन्त भयंकर वस्तुएँ भी तुम्हें विचलित नहीं कर सकेंगी। एक पर्वत भी तुम्हारे ऊपर गिरे, तो तुम परवाह नहीं करोगे, क्योंकि तुम जानते हो कि यह एक मृग-मरीचिका है।[६]

स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद
ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्-कुले भवति।
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहा-
ग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ।।३.२.९।।

'ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है।' ब्रह्म तथा ब्रह्मज्ञ में कोई अन्तर नहीं है। ... ऐसी मुक्तात्मा के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। उसका जन्म और मरण नहीं होता। वह सदा के लिए मुक्त होता है।[७]

मन से इस आत्मा को जाना नहीं जा सकता, क्योंकि आत्मा ही 'ज्ञाता' है। ... अत: मनुष्य उन आत्मा में स्थित अवतार तक को ही जान सकता है। मानवीय बुद्धि ईश्वर के बारे में जो सर्वोच्च धारणा कर सकती है, वही अवतार है। उसके बाद आपेक्षिक ज्ञान नहीं रहता।

इस प्रकार के ब्रह्मज्ञ – अवतार – दुनिया में यदा-कदा ही पैदा होते हैं। अति अल्प लोग ही उन्हें समझ पाते हैं। ये अवतार ही शास्त्रों में निरूपित सत्यों के प्रमाण हैं – भवसमुद्र के आलोक-स्तम्भ हैं! इन अवतारों के संग तथा कृपादृष्टि से क्षण भर में ही हृदय का अन्धकार दूर हो जाता है और हृदय में सहसा ब्रह्मज्ञान का स्फुरण हो जाता है। ऐसा क्यों या किस पद्धति से होता है, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु होता अवश्य है। मैंने वैसा होते देखा है।

श्रीकृष्ण ने आत्मा में स्थित होकर गीता कही थी। गीता में जिन-जिन स्थानों में 'अहम्' शब्द का उल्लेख है – वह 'आत्मा' का सूचक है। 'मामेकं शरणं व्रज – एकमात्र मेरी शरण लो' का अर्थ है – 'आत्मा में स्थित हो जाओ।' यह आत्मज्ञान ही गीता का अन्तिम लक्ष्य है। योग आदि का उल्लेख उसी आत्म-तत्त्व की प्राप्ति के सन्दर्भ में किया गया है।

जिन्हें यह आत्मज्ञान नहीं होता, वे लोग आत्मघाती हैं। "वे लोग असत् (संसार) में आसक्त होकर स्वयं को मार डालते हैं। वे इन्द्रिय-विषयों की फाँसी लगाकर आत्मघात कर लेते हैं। क्या तुम केवल दो दिनों तक ही रहनेवाले इन तुच्छ भोगों की उपेक्षा नहीं कर सकते? क्या तुम भी उन्हीं लोगों की टोली में शामिल होना चाहते हो, जो अज्ञान में जन्म लेकर अज्ञान में ही मर जाते हैं?

हर किसी को – अधम-से-अधम व्यक्ति को भी इस आत्मतत्त्व की बातें सुनाओ। निरन्तर सुनाते-सुनाते तुम्हारी भी बुद्धि निर्मल हो जायगी। सदैव 'तत्त्वमसि' (वह तू ही है), 'सोऽहमस्मि' (वह मैं हूँ), 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (यह सब कुछ ब्रह्म ही है) आदि महामंत्रों की आवृत्ति करते रहो। हृदय में सिंह के समान बल रखो। भय की क्या बात? भय ही मृत्यु है – भय ही महापाप है।[८]

सत्य बलप्रद है; सत्य पवित्रता है और सत्य ज्ञान-स्वरूप है। सत्य को शक्तिदायी होना चाहिये, उसे आलोकप्रद होना चाहिये और उसे स्फूर्तिदायक होना चाहिये। समस्त दुर्बल बनानेवाली वस्तुओं को छोड़कर अपने उन आलोकमय, बलप्रदायी, दिव्य दर्शनशास्त्र – उपनिषदों की ओर लौटो। संसार के महानतम सत्य वैसे ही सर्वाधिक सहज और बोधगम्य हैं, जैसा कि हमारा अपना अस्तित्व। उपनिषदों के सत्य तुम्हारे सामने हैं। इन्हें उठाओ और अपने जीवन में रूपायित करो।[९] ○○○

६. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २४६-४८

७. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ. १६८; खण्ड ४, पृ. १३०

८. वही, खण्ड ६, पृ. १६८-६९

९. वही, खण्ड ५, पृ. १२०

पृष्ठ २०८ का शेष भाग

हड्डी (Femur bone) टूट गई। जब वे अस्पताल से वापस लौटे, तो मैंने उनसे पूछा, "आप कैसे हैं महाराज?" उन्होंने कहा, "ठीक ही हूँ।" मैंने फिर पूछा, "आपको क्या अभी दर्द हो रहा है।" शारीरिक कष्ट की बात स्मरण कराना उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने तब मुझसे पूछा, "तुम ठीक तो हो?" मैंने कहा, "हाँ महाराज।" उन्होंने तत्क्षण कहा, "नहीं, तुम्हारा सब कुछ ठीक नहीं है। यदि कोई डॉक्टर तुम्हारे शरीर की जाँच करे, तो वह तुम्हारे शरीर के विषय में कुछ-न-कुछ अनियमितता जरूर बता देगा। सम्पूर्ण नीरोगी शरीर होना परस्पर-विरोधी बात है।" मुझे एक उचित शिक्षा प्राप्त हुई । **(क्रमशः)**

काव्य सरिता

प्रभु की कृपा अपार

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

ऐ मानव तू देख तो करके तनिक विचार ।
परमेश्वर ही एक है अग-जग का आधार ।।
इस अपूर्ण संसार में परमेश्वर ही पूर्ण ।
बिना पूर्ण आधार के जीवन होता चूर्ण ।।
कण-कण क्षण-क्षण में सदा परमेश्वर का वास ।
किन्तु न लक्षित हो कभी बिन श्रद्धा-विश्वास ।।
जब तक अन्तस् में उठा पर्वत-सम अभिमान ।
तब तक दिख सकते कहाँ परमेश्वर भगवान ।।
बिन देखे परमेश्वर पर जो करता विश्वास ।
उसके जीवन में सदा रहता है उल्लास ।।
जिस जन ने भी सुन लिया अपना अनहदनाद ।
निशिवासर उसका कभी मिटता नहीं प्रसाद ।।
वह दे सकता है नहीं कभी किसी को चैन ।
जिसके दारुण बैन हैं विषधर जैसे नैन ।।
कलह कालिमा से भरा मायामय संसार ।
बचे वही जिस पर रहे प्रभु की कृपा अपार ।।
नहीं प्रेम भगवान से नहीं आत्मसन्धान ।
कैसे हो सकता कभी भव-भ्रम-भीति-निदान ।।
मानवता का विश्व में यदि न बढ़ा सम्मान ।
तो फिर सारा व्यर्थ है मानव का उत्थान ।।
परमेश्वर की दृष्टि में छोटा-बड़ा न कोय ।
जो जैसी करनी करे, सो वैसा ही होय ।।
ऐ मानव ! परमेश को देख सके तो देख ।
मिट जाये मन-दृष्टि से भेद-भाव की रेख ।।

बिहरैं श्री भगवान अवध में

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती, झाँसी

बिहरैं श्री भगवान अवध में ।।
माथे मुकुट मनोहर राजै, अधरन मृदु मुस्कान अवध में ।।
चरनन सोहैं जड़ाउ जूती, कर कमलन धनु-बान अवध में ।।
परम पुनीत पीत पट छीनत चपला की चमकान अवध में ।।
या छवि शिवजी मन में बसावैं ध्यान धरैं हनुमान अवध में ।।
दीनदास राजेश के सरवस रसिक जनन्ह के प्रान अवध में ।।

सोनेवाले ओ मुसाफिर

विजय कुमार श्रीवास्तव, सीतापुर

सोने वाले ओ मुसाफिर नींद का सुख छोड़ दे।
जागकर तू लक्ष्य-पथ पर कदम अपने मोड़ दे।।
जिन्दगी भर वासना की आग में जलता रहा,
या कहूँ यों - पतन के संसार में पलता रहा।
क्या कभी सुख दे सकीं आलस्य की परछाइयाँ,
जो कि तन पर दे गयी हैं व्यर्थ की ही झाइयाँ ।
कर रहा हो भोग व्याकुल तो सजगता जोड़ दे,
सोने वाले ओ मुसाफिर.....
इस जनम के पूर्व में भी जनम कितने पा चुका,
अकड़ के कारण कभी तू स्वप्न में भी ना झुका ।
आज भी वह ही अकड़ ले व्यर्थ में तू घूमता,
झुके बिन मोती मिलेंगे धरा के कैसे बता ।
काठ के मानिन्द मत जी अमिय घटको फोड़ दे,
सोने वाले ओ मुसाफिर.....
त सजग हो कदम अपने और अब आगे बढ़ा,
गिर रहे हों लक्ष्य से जो उन्हें भी ऊपर चढ़ा ।
जगेगा पौरुष तेरा तो स्वप्न खुद मर जायेंगे,
वास्तविकता की धरोहर के कमल खिल जायेंगे ।
छोड़ आलस खंडहर को उलूकों हेतु छोड़ दे,
सोने वाले ओ मुसाफिर.....
भ्रमित करती जो दिशायें उनका चिन्तन है वृथा
जागते रहना दिलाता पुण्य का सुख सर्वदा।
मोह, ममता, अहं की प्राचीर दिखती तो सुखद,
किन्तु इसकी क्षुधा की अभिवृद्धि की है बड़ी हद
इसलिए संयम बिठाकर सजग मन को ठौर दे,
सोने वाले ओ मुसाफिर.....

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४१)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज ! ठाकुर ने कहा है कि यहाँ की अनुभूति वेद-वेदान्त को पार कर गई है, थोड़ा इसका अर्थ समझाइए ।

महाराज – वेद-वेदान्त में उतना ही लिखा हुआ है, जितना वाणी से अभिव्यक्ति है। किन्तु अनुभूति और अधिक गंभीर है। सब कुछ अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, वह संभव नहीं है।

– तो केवल ठाकुर ही क्यों, यह बात तो किसी भी साधक के संबंध में हो सकती है।

महाराज – वैसा हो सकता है। ठाकुर के सम्बन्ध में मानते हो कि नहीं?

– निश्चय ही मानता हूँ।

महाराज – तब? ठाकुर ने तो यह नहीं कहा है कि यह केवल उनका है। किसी दूसरे को ऐसी अनुभूति नहीं होगी, यह बात ठाकुर ने नहीं कही है।

– लगता है कि अन्य अवतारों या साधकों से ठाकुर की आध्यात्मिक अनुभूति की गम्भीरता और व्यापकता अधिक है। इसीलिए यह बात कही जाती है।

महाराज – नहीं, नहीं, ऐसा अर्थ तो ठाकुर की बात से नहीं पाते हैं। ठाकुर की बात समझनी होगी। ऐसी बात ठाकुर नहीं कहेंगे।

प्रश्न – महाराज ! हम लोगों ने दीक्षा ली है। गुरुजी ने साधना पद्धति बता दी है। यह हुआ हमारे आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ और ईश्वर दर्शन हुआ परम लक्ष्य। अब इसके बीच में हमलोगों में क्या-क्या परिवर्तन या अवस्थान्तर हो सकता है?

महाराज – परिवर्तन यह होगा कि हम लोग आदर्श के अनुरूप होंगे, आदर्श जैसे होंगे। जैसे – यदि ठाकुर मेरे आदर्श हों, तो हमारे जीवन में धीरे-धीरे वैसा ही होगा। अर्थात् हमलोग उनके जैसे पवित्र आध्यात्मिक गुणसम्पन्न होंगे।

प्रश्न – महाराज ! क्या समाधि के बिना ज्ञान की प्राप्ति संभव है ?

महाराज – हाँ, संभव है। ज्ञान तभी होता है, जब अज्ञान दूर हो जाता है। वह चाहे समाधि से हो या अन्य प्रकार से हो। ज्ञान का लक्षण है कि वह संशय विपर्यय रहित होगा। तभी ज्ञान होगा। समाधि तो योग-मार्ग है।

– महाराज ! क्या अद्वैत वेदान्त ज्ञान का मार्ग है?

महाराज – हाँ।

– लेकिन अद्वैत वेदान्त साधना के अन्त में ठाकुर को निर्विकल्प समाधि हुई थी?

महाराज – वह केवल ज्ञानमार्ग से नहीं हुई। उसमें योग भी है।

प्रश्न – महाराज! स्वामीजी का अनुसरण करते हुए महापुरुष महाराज ने एक स्थान पर कहा है – "ठाकुर ने इस बार अपनी साधना के द्वारा ब्रह्म कुण्डलिनी को जगा दिया है। इस बार जो थोड़ी-सी भी साधना करेगा, उसे ब्रह्मज्ञान होगा।" ब्रह्मकुण्डलिनी जगाना क्या है महाराज?

महाराज – ब्रह्मकुण्डलिनी अलग से कुछ है, ऐसा नहीं है। जिस प्रकार से कुण्डलिनी जाग्रत हो सकती है, उस पथ या उपाय को ठाकुर ने दिखा दिया है। ये सब तंत्र की धारणा है। वास्तव में महापुरुष महाराज ने कहा है – "स्वामीजी कहते थे, "जानते हो, इस बार ब्रह्मकुण्डलिनी स्वयं जाग्रत हुई है।" वास्तव में ठाकुर की साधना से जगत् में एक महाजागरण का स्वर सुनाई पड़ा है। **(क्रमशः)**

निःस्वार्थता ही ईश्वर है । कोई मनुष्य भले ही रत्नखचित सिंहासन पर आसीन हो, सोने के महल में रहता हो, परन्तु यदि वह पूर्ण रूप से निःस्वार्थ है, तो वह ब्रह्म में ही स्थित है । परन्तु दूसरा व्यक्ति, चाहे झोपड़ी में ही क्यों न रहता हो, चिथड़े ही क्यों न पहनता हो, सर्वथा दीन-हीन भाव से ही क्यों न रहता हो, परन्तु यदि वह स्वार्थी है, तो वह संसार में पूरी तौर से डूबा हुआ है ।

– स्वामी विवेकानन्द

अद्भुत लोगों का सान्निध्य !

नन्दलाल टाँटिया, वाराणसी

गत १५ वर्षों से उत्तरकाशी में कई अद्भुत सन्तों के दर्शन हुए। उनके साथ जिस सुख की अनुभूति हुई, उसे मैं सबको बाँटकर सबको आनन्द देना चाहता हूँ । ये सब घटनाएँ सन् १९९४ से २००७ तक के बीच की हैं।

सन् २००४-०५ में गंगाजी के तट पर टहल रहा था। सामने एक व्यक्ति माथे पर कम्बल, गले में लोटा, दोनों हाथ कोहनी तक कटे हुए गंगोत्री की तरफ धीमी चाल से जा रहा था। मैंने अभिवादन किया, तो वे रुके नहीं, अत: मैंने भी अपनी दिशा गंगोत्री की ओर मोड़ ली। मैंने पूछा – ''बाबाजी पैदल यात्रा में दो-तीन दिन लग जायेंगे। हाथ न होने के कारण आपको असुविधा तो है ही। गंगोत्री जाने के लिये आपके लिए बस की व्यवस्था हो जायेगी। आप आज शाम तक गंगोत्री पहुँच जायेंगे।'' उन्होंने कहा – ''बाबूजी मेरा नाम राधेश्याम है। मैं कारखाना में मजदूर रहा और आरा मशीन में मेरे दोनों हाथ कट गये। मैंने संकल्प लिया कि पैदल गंगोत्री जाऊँगा और वहाँ के गंगाजल से रामेश्वरम् में भगवान शिव की पूजा करूँगा। हरिद्वार से पैदल ही आ रहा हूँ और गंगोत्री तक किसी प्रकार जाऊँगा। उन्हें रास्ते में चाय के लिए कुछ पैसे देने लगा, तो कहने लगे कि जब आवश्यकता होती है, तो किसी दुकान के सामने खड़ा हो जाता हूँ। कोई यात्री या दुकानदार मुझे चाय पिला देता है।'' मैंने पूछा – ''बिना हाथ के आप कैसे चाय पी पाते हैं? उन्होंने दोनों कोहनी जोड़कर दिखाया कि इस प्रकार मैं ग्लास थाम लेता हूँ। शुरू में कुछ महीने असुविधा रही, किन्तु अब पूर्ण अभ्यास हो गया है।''

मेरे विशेष आग्रह पर वापसी में मेरे यहाँ कुछ दिन ठहरने का वचन दिया। सम्भवत: वे न भी ठहरते, किन्तु दैवी कृपा से मैं गंगा तट पर टहल रहा था। लगभग दो सप्ताह बाद सामने से राधेश्याम को आते देखा। उन्हें अपने घर लाया। बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने कहा – बाबूजी ! मेरे जीवन की इच्छा पूरी हो गयी। गंगा मैया में स्नान किया और वापसी में रामेश्वरम् में अभिषेक हेतु जल ले आया। मुझे भी आचमन हेतु दिया। पाँच-सात दिन का आतिथ्य स्वीकार किया। उनकी दिनचर्या से मेरी ईश्वर के प्रति आस्था बढ़ी कि भगवान कष्ट देते हैं, तो उसी अनुपात में सहने की शक्ति भी प्रदान करते हैं। जाते समय मेरा सचिव उन्हें बस में बैठाने गया और रामेश्वरम् की यात्रा हेतु टिकट का पैसा देने लगा। राधेश्याम ने कहा – बाबूजी ! हम विकलांगों का रेल भाड़ा नहीं लगता है। आप केवल हरिद्वार तक पहुँचा दें। कुछ रुपये मैंने उन्हें दिये कि भाई ! यह मन्दिर के बक्से में डाल दीजिएगा और उन्हें यहाँ का पता लिखकर पोस्टकार्ड दे दिया। करीब बीस दिन बाद किसी से लिखाया हुआ मेरे द्वारा दिया पोस्टकार्ड वापस आया। उन्होंने लिखा था – बाबूजी मैंने यहाँ शिव का अभिषेक किया और आपकी राशि बक्सों में डाल दी है। राधेश्याम मरहौरा के निवासी हैं। मैंने बहुत आग्रह किया कि भाई ! आप रामेश्वरम् से मेरे पास आकर रहें। वे मुस्कुराकर टाल दिये। उनका सूखा हुआ प्रफुल्लित चेहरा १५ वर्ष हो गये अभी तक मेरे मानस पर अंकित है।

उन्हीं दिनों एक दुबले संन्यासी तेज गति से उत्तरकाशी की ओर जा रहे थे। वे तेलुगु भाषी थे और केवल हिन्दी समझ पाते थे। मैंने पूछा – महाराज ! रात में कहाँ विश्राम किया। क्या भोजन हो गया? तेज गति से चलते हुए बोले – क्या भोजन-भोजन करते हो। मैया की गोद में बैठा हूँ। खूब दूध पीया, पेड़ के नीचे सो गया और अब रवाना हो गया। उनकी सेवा करना चाहता था, किन्तु मैं वंचित रहा।

प्राय: दस में से आठ जगह सेवा लेने से संत हाथ जोड़ लेते थे। एक अन्य अद्भुत उदाहरण उन्हीं दिनों देखने को मिला। एक युवक कंधे पर बैग लटकाये गंगोत्री जा रहा था। बहुत ही स्मार्ट और देखने में पढ़ा-लिखा लगता था। उनसे मैंने आग्रह किया कि वापसी में आप कुछ दिन मेरे पास ठहरें। वह युवक मुम्बई में वित्त मंत्रालय का बड़ा अफसर था। वैराग्य हो गया। सरकारी गाड़ी, अच्छी नौकरी, घर छोड़कर संन्यास की तैयारी में आ गया। संभवत: वह मेरे मित्र श्रीमेहता जी से परिचित था, जो उन दिनों रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर थे। वापसी में मेरे पास चार-पाँच दिन ठहरा। युवक का क्या दिव्य चेहरा ! जिनमें दिव्यता होती है या न भी रहती हो, प्रभु उन्हें दिव्य बना कर ही अपनी गोद में बैठाते हैं। इस युवक का नाम मोहन था। वित्त मंत्रालय में आई.आर.एस. (रेवेन्यू सर्विस) में उत्तीर्ण होकर अफसर बन गया। वैराग्य हुआ, तो एक वर्ष में ही सब कुछ छोड़कर प्रभु की शरण में आ गया। उसके साथ

दस दिन बहुत आनन्द से कटे। मुझे बाद में ज्ञात हुआ कि वह पुन: गंगोत्री चला गया और पूरा शीत-काल भोजवासा के पास एक गुफा में रहकर साधना की।

एक पोलैण्ड की युवती नवम्बर के महीने में साधना करने को आयी। मैंने साथी कर्मचारी को नियुक्त किया कि वह उसे गंगोत्री पहुँचाने में मदद करे। धनाढ्य महिला थी। साथ में दो गैस के सिलेंडर, आलू, चावल आदि लेकर गंगोत्री पहुँची और भोजवासा के पास गुफा में चली गयी। नवम्बर में गयी और मार्च के अन्त में निकली। तालमखाने की तरह आस्ट्रेलिया में कोई दाने होते हैं, एक दिन में दस-पन्द्रह खाने से पर्याप्त हैं। अधिक भोजन न होने से पेट साफ का झमेला नहीं रहता। मेरे एक इटालियन मित्र ने ये दाने दिखाये थे। अपने यहाँ के तालमखाने जैसे थे।

चर्म रोग से पीड़ित एक वृद्ध सन्त स्वामी अमरतीर्थ थे। उनके लिये आर्य वैद्यशाला कोट्टाकल से दवा लाता था, जिससे उन्हें लाभ हुआ। वे करीब १५ वर्षों से चर्म रोग भुगत रहे थे। वृद्धावस्था में भी हाथ में लाठी लिए बरसात के मौसम में भी माथे पर पॉलीथीन, गले में भिक्षापात्र लिये जाते थे। हमारी दण्डी क्षेत्र की कुटिया से बाद में गीता भवन में आ गये। वहाँ भी प्राय: मैं उनके पास जाता था। एक दिन सुबह नहीं जा पाया और उसी दिन वे अन्तिम घड़ी गिनने लगे। दिनभर उनका कष्ट में बीता। मैं शाम को वहाँ पहुँचा। हल्की-सी आँखें खोलकर बोले – नन्दलाल आ गये। उन्होंने मुँह खोला, तो मैंने अपने सेवक को कहा कि तुरन्त गंगाजल लाओ। दो चम्मच गंगाजल मुँह में डाला और सदा के लिए उनका प्रभु से मिलन हो गया। संतों ने मुझे उलाहना दिया कि टांटिया जी ! अमरतीर्थ की साँस आपको अशीर्वाद देने हेतु ही अटकी रही। ऐसे दिव्य संत की मुझे दस वर्षों तक सेवा करने का अवसर मिला। दूसरे दिन प्रात: खूब धूमधाम से उनको जल समाधि दी गयी। यह सम्भवत: चौथी बार जल समाधि देने का मुझे पुण्य प्राप्त हुआ।

कैलाश आश्रम के सामने गंगा तट पर पॉलीथिन शीट के नीचे गुजरात से चातुर्मास हेतु एक राजस्थानी संत आते थे। उनका नाम मनोहर लाल था। इधर इन तीन वर्षों से मेरा दण्डी क्षेत्र में आना भी अव्यवस्था के कारण न हो पाया और उसके पहले भी मनोहर लाल नहीं आये। वे सुबह से रात तक उठते-बैठते, सोते-जागते केवल रामजी का नाम लेते। मुझे स्मरण हो आया कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव ने भी स्वामी विवेकानन्द जी को रामनाम जपने का आदेश दिया था। भगवान शिव हमेशा राम को जपते थे। ऐसे दिव्य दर्जनों संतों के दर्शन एवं आशीर्वाद से मैं धन्य हुआ।

सन् १९८७ में मैं अपनी पत्नी के साथ गंगोत्री गया था। मेरी पत्नी की किडनी खराब हो गयी थी। जाँच कराने के पहले गंगोत्री के जल से रामेश्वरम् में भगवान शिव का अभिषेक करने का मन था। हमलोग योग निकेतन में ठहरे। वहाँ सफेद वस्त्र में एक युवा संत मिले। वे मधुमेह से पीड़ित मेरी पत्नी के लिये लौकी की सब्जी बनाते थे। वे इसे नि:स्वार्थ और प्रेम से करते थे। गंगोत्री से वापसी में भी उन्होंने उसी प्रकार सेवा की। संयोग से उसी समय दण्डी क्षेत्र के कर्मचारी चन्द्रमोहन से मिलना हुआ। आज २५ वर्ष हो गये। इन दोनों की सेवा मेरे मानस पर हमेशा अंकित रहेगी। पत्नी के चले जाने के बाद १९९३ में यहाँ स्थायी रूप से आया। वहीं योग निकेतन के युवा साधु मिले। अभिवादन के बाद कहने लगे - टांटियाजी ! आपने मुझे पहचाना नहीं, मैं स्पेनिंग मास्टर गुप्ता हूँ। मैं अवाक् रह गया। गुप्ताजी आप यहाँ कैसे? एक जमाने का बड़ा अफसर यहाँ साधारण सफेद वस्त्र में। उन्होंने बताया कि वे रतलाम की मिल से बिड़लाजी के यहाँ आ गये और वहाँ से शीघ्र सेवानिवृत्त होकर सारी जमा पूँजी रामकृष्ण मिशन को देकर यहाँ साधना हेतु १९८७ में आ गये। जिस मिल में अज्ञात देव काम करते थे, उसके मैनेजर मेरे मित्र रहे। कलकत्ता में उनसे चर्चा हुई। कहने लगे भाईजी, ये तो अद्भुत व्यक्ति हैं। इन्हें सेवानिवृति के समय पाँच लाख रुपये मिले। वे सम्पूर्ण राशि रामकृष्ण मिशन को देकर चले गये। एक बार मिल के मैनेजर का उत्तरकाशी आना हुआ। दोनों साथी प्रेम के आँसुओं से भीग गये। ○○○

यदि किसी के हृदय में ठीक ठीक अनुराग पैदा हो और वह ध्यान-भजन की आवश्यकता समझने लगे, तो निश्चय ही भगवान उसको सद्गुरु से मिला देते हैं । साधक को सद्गुरु के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं ।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१५)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

'ब्रह्मवादिन्' में कार्य करना गुडविन के लिए कठिन हो रहा था। स्वामीजी उन्हें प्रस्तावित अंग्रेजी पत्रिका का सम्पादक बनाना चाहते थे, पर वह कभी शुरू नहीं हो सकी। आलासिंगा पहले से ही 'ब्रह्मवादिन्' के सम्पादक थे और उनका स्थान निश्चित था। अत: गुडविन स्वयं को एक प्रकार की जटिल स्थिति में अनुभव करने लगे। इसके अलावा गुडविन को भारतीय पद्धति के अनुसार समंजन करने में दिन-पर-दिन कठिनाई हो रही थी। उनका प्रसन्न मिजाज अब चिड़चिड़ा हो रहा था और यह बात स्वामीजी को भलीभाँति पता थी। गुडविन की मृत्यु के बाद आलासिंगा ने स्वामीजी को जो पत्र लिखा था, उसमें उल्लेख है, ''आपने जब उन्हें यहाँ भेजा, तो उनके चिड़चिड़े स्वभाव को सहन करने और उनसे शान्तिपूर्वक व्यवहार के लिए कहा था।'' 'ब्रह्मवादिन्' के घेरे में गुडविन खिन्न होने लगे और उन्होंने 'मद्रास मेल' में वेतनभोगी के रूप में एक और कार्य ग्रहण किया। १६ सितम्बर को श्रीमती ओली बुल को लिखे पत्र में उन्होंने स्पष्टीकरण दिया, ''मुझे आशा है कि आप सोचेंगी कि 'ब्रह्मवादिन्' की उन्नति हुई है...यहाँ कोई मदद करने वाला नहीं है। मद्रास जैसा आलसी स्थान मैंने कहीं देखा नहीं। मैंने 'मेल' में कार्य करना शुरू किया है। उन्होंने मुझसे बहुत बार पूछा था। मैंने इसलिए यह कार्य लिया क्योंकि उन्होंने मुझे स्वामीजी के कार्य को प्राथमिकता देने की पूरी छूट दी है और इसके द्वारा मेरा यहाँ व्यय-भार और मेरी माँ को भी सहायता हो जाएगी। मेरी बहन का विवाह हो रहा है और मेरी माँ नई परिस्थितियों में घर में रहना पसन्द नहीं करेगी और मेरे साथ रहेगी।''

गुडविन ने १९ जुलाई को श्रीमती बुल को लिखा था कि वे स्वामीजी के साथ उत्तर भारत के दौरे पर जाएँगे। नवम्बर में गुडविन स्वामीजी के साथ जम्मू और बाद में लाहोर गए। लाहोर में गुडविन ने स्वामीजी के व्याख्यान 'वेदान्त' को लिपिबद्ध किया था । वही उनका आशुलिपि में लिपिबद्ध किया हुआ अन्तिम व्याख्यान था। लाहोर की इस यात्रा में स्वामी रामतीर्थ स्वामीजी और उनके साथियों से मिले। स्वामी रामतीर्थ ने पण्डित दीनदयालजी व्याख्यान वाचस्पति को पत्र में लिखा था, ''(बंगाल से) तीन संन्यासी और तीन अंग्रेज जिनमें एक अंग्रेज महिला भी थी, उनके (स्वामीजी के) साथ आए थे (गुडविन और सेवियर दम्पती स्वामीजी के साथ थे)। उनमें से एक अंग्रेज संवाददाता थे, जो उनके दिए गए व्याख्यानों को लिपिबद्ध करते और उन प्रतियों को 'ब्रह्मवादिन्' एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भेजते थे। ये अंग्रेज सज्जन अत्यन्त प्रतिभावान व्यक्ति हैं और स्वामीजी के प्रति उनकी प्रगाढ़ भक्ति है।'' नगेन्द्रनाथ गुप्त गुडविन से लाहोर में मिले थे और उनकी स्मृति में गुडविन, 'बालक के समान सरल और थोड़े-से भी सदय व्यवहार के बदले अत्यन्त आभारी' थे।

इस छोटी यात्रा के बाद गुडविन पुन: मद्रास लौटे। वे अब स्वामीजी से कभी मिलने वाले नहीं थे। गुडविन का समाचार हमें अब निवेदिता के ३१ जनवरी को श्रीमती एरिक हेमण्ड को लिखे पत्र में प्राप्त होता है। निवेदिता २१ जनवरी को मद्रास में गुडविन के साथ थीं। निवेदिता ने लिखा है कि उन्होंने और गुडविन ने 'ब्रह्मवादिन्' में प्रकाशित श्रीमान एरिक हेमण्ड की कविता पर चर्चा की थी और गुडविन ने उन्हें कहा था कि स्वामीजी इसे पढ़कर प्रसन्न हुए।

२५ फरवरी, १८९८ को स्वामीजी ने स्वामी रामकृष्णानन्द को पत्र में लिखा था, ''गुडविन को मेरा प्रेम देना और जैसे भी सम्भव हो, हम अपने जापान जाने के मार्ग में उससे मिलने वाले हैं।'' दुर्भाग्यवश, दोनों में से कोई भी योजना कार्यरूप में परिणत नहीं हुई।

इसके कुछ ही दिनों बाद गुडविन उटकमण्ड में स्थानान्तरित हुए – शायद मद्रास की भयावह गर्मी से बचने के लिए। गुडविन के बारे में अगले समाचार उनके ५ मई को जोसेफीन मेक्लाउड को लिखे पत्र में प्राप्त होते

हैं। यह स्पष्ट है कि गुडविन की खिन्नता अत्यन्त कटुता में परिवर्तित होना शुरू हो गई थी। स्वामीजी के प्रति उनकी प्रगाढ़ भक्ति सदैव अविचल थी, किन्तु भारत के प्रति उनके मनोभाव में विद्वेष प्रकट रूप से दीख रहा था। उटकमण्ड से उन्होंने जोसेफीन मेक्लाउड को लिखा, ''जिस दिन आपका पत्र मिला, उसी दिन मैंने आलासिंगा को दिया, और जैसा हमेशा होता है, 'ब्रह्मवादिन्' लोगों की तरफ से इसका जबाब आना अभी बाकी है। स्वामीजी के व्याख्यानों की सूची संलग्न भेज रहा हूँ और उनमें से श्रेष्ठ व्याख्यानों को चिह्नित भी किया है, किन्तु आप देखेंगी कि उनमें से कुछ पहले ही अमेरिका में प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से कौन-से आपको पसन्द हैं, यदि आप कृपा कर सूचित करेंगी, तो मैं उन्हें 'प्रबुद्ध भारत' के लोगों के पास भेजूँगा, जो इस कार्य की ओर ध्यान देते हैं।

''जब मैं भारत पहुँचा, तब स्वामीजी के प्रति मेरी क्या भावनाएँ थीं, यह कहने की आवश्यकता नहीं है, पर अब मुझे यहाँ सोलह महीने हो चुके हैं और आपके दृष्टिकोण से मैं पूरी तरह से सहमत हो चुका हूँ। मैं व्यक्तिगत रूप से उनके लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हूँ, पर अन्य विषयों के लिए मुझे कौड़ी की भी परवाह नहीं है। यदि मैं उनका कोई भी कार्य करता हूँ, तो वह केवल इसलिए कि वे इसे चाहते हैं। सचमुच कुछ इसी कारणवश वर्तमान में मैं पूरी तरह बिना कार्य के हूँ। यद्यपि मद्रास में मैंने सचमुच प्रयत्न किया था, किन्तु मुझे ऐसा लगा कि उनके लिए मैं कुछ भी सहायता नहीं कर सका और उनके लिए बोझ बनकर रहना ठीक नहीं होगा, इसी कारणवश मैंने 'मेल' का कार्य शुरू किया।

''मेरी कश्मीर जाने की बहुत इच्छा है, पर इस समय नहीं जा सकता। यहाँ से नीचे जाकर मैं एक महीने की छुट्टी के लिए येथष्ट चेष्टा करूँगा, जिससे मैं एक सप्ताह अथवा दस दिन श्रीनगर में रह सकूँ, पर इस विषय में मुझे कुछ आशा दिखाई नहीं देती। स्वामीजी को मैंने पिछले नवम्बर से देखा नहीं है।

''मुझे पता नहीं कि आपको भी मेरी तरह फिलीपीन्स में हुए नौसेना युद्ध (अमेरिका-स्पेन युद्ध) के परिणाम पर खुशी हो रही होगी अथवा आप सचमुच में बहुत बड़ी वेदान्ती हैं!! मुझे लगता है कि मैं पचास प्रतिशत अमेरिकी और बाकी अंग्रेज हूँ (और, धीरे से बोलता हूँ, थोड़ा भी हिन्दू नहीं...)''

गुडविन एक परिश्रमी और सेवापरायण व्यक्ति थे। किसी कार्य के लिए उपयोगी न होना और सहायता के बदले बाधा बनना, यह उनके लिए ऐसा बोझ था, जिसे वे सहन नहीं कर सकते थे। 'मद्रास में मैंने सचमुच प्रयत्न किया', उनके इस उद्गार से उनका दुख, अप्रसन्नता और रोष व्यक्त होता है।

इस पत्र को लिखे दो सप्ताह भी नहीं हुए होंगे, गुडविन की मृत्यु हो गई। गुडविन जो अन्त तक एक अंग्रेज थे, हठपूर्वक मूसलाधार वर्षा में क्रिकेट मैच देखने गए। आलासिंगा ने इसकी खबर स्वामीजी को दी थी, ''बेचारे गुडविन हमारे बीच नहीं रहे और हम सभी उनके लिए अत्यन्त दुखी हैं...हम दोनों में बहुत अच्छी मित्रता हो गई थी और उनकी मृत्यु पर मुझे बहुत दुख हो रहा है। उन्होंने रामकृष्ण मिशन के लिए अद्भुत कार्य किया, उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो...मेरा एक मित्र दिनांक २६ अथवा अन्य किसी दिन ऊटी से यहाँ आया और उसने कहा कि (गुडविन) अपने स्वास्थ्य के प्रति बहुत लापरवाह हैं और जरा भी ध्यान नहीं देते थे। शायद १६ अथवा १७ को वहाँ क्रिकेट मैच थी और गुडविन बारिश में दो-तीन बार भीग गए थे । उन्होंने अपना कोट नहीं बदला। अगले दिन उन्हें थोड़ा बुखार हो गया, तो भी वे मद्रास लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य मिस्टर रोस के अन्तिम संस्कार में उपस्थित होने के लिए गए। ऐसा लगता है कि वे फिर से भीग गए होंगे। उनका बुखार और भी बढ़ता गया। इस समय ऊटी की जलवायु बहुत ही खराब है और इन्फ्लुएन्जा, टायफाइड और पेचिश का भारी प्रकोप है। 'मेल' कार्यालय को इस बात की जानकारी बहुत देरी से हुई कि गुडविन का स्वास्थ्य गम्भीर है और उन्होंने दवाई लेना अस्वीकार कर दिया है। उसी शाम को उन्होंने अपने अन्य संवाददाताओं को भेजा और हमें रात को उनकी गम्भीर बीमारी की खबर मिली। मैंने गुडविन को तुरन्त तार भेजा और मित्रों को भी सूचित किया कि वे उसकी शुश्रूषा करें और हर सम्भव मदद करें । मैंने गुडविन को तार भेजा कि यदि उसे मदद की आवश्यकता हो, तो हम यहाँ से चलने के लिए तत्पर हैं। अगली शाम को अर्थात् रात को आठ बजे मेरे मित्र ने तार भेजा कि गुडविन अस्पताल में मरणासन्न हैं। ऐसा लगता है कि जब तक 'मेल' के संवाददाता मिस्टर ब्रेम्नर ऊटी पहुँचे, तब गुडविन को उन्माद हो गया था और बार-बार अपने बिस्तर से भाग रहे थे। उन्हें अस्पताल में लाया गया और अगली रात लगभग १०.३० बजे उनका निधन हो गया। **(क्रमशः)**

इष्ट-नाम का जप और ध्यान करें

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

भगवान बड़े कृपालु हैं। उन्होंने कितने लोगों पर कृपा कर उन लोगों का संकटों से उद्धार किया है। हमें ऐसी आदत डालनी चाहिए कि हम कभी भी भगवान को न भूलें। संसार का काम करते-करते भगवान का नाम लेना चाहिये। जो भी बाधायें आती हैं, उनमें कुछ-न-कुछ कारण रहता ही है। हमारी असुविधाओं को भगवान दूर करने का प्रयत्न करते हैं। भगवान उनका नाम लेने की सुविधा कर देते हैं। असुविधा में भी अपना मंगल होता है। तब भगवान की कृपा होती है।

आध्यात्मिक जीवन में निरन्तर अपने मन को देखना चाहिए कि मेरा मन कहाँ जा रहा है। मन को इष्ट में लगाये रखने का प्रयत्न करना चाहिए। जप के साथ-साथ एकाग्र मन से अपने इष्ट की ओर भी देखें। अपने इष्ट का ध्यान करें। अभी मन सांसारिक वस्तुओं का ध्यान करता है, किन्तु इसे संसार से हटाकर के श्रीठाकुर जी के चरणों में लगाना है। ध्यान करने के लिए ध्येय की महत्ता को अपने मन में बार-बार स्थापित करना चाहिए। हमारे मन में ध्येय की विशेषता, उनकी महत्ता का बोध होना चाहिए। तब जाकर मन ध्येय में, इष्ट में लगेगा। जिस प्रकार से गुरुदेव ने ध्यान करने को बताया है, वैसे ही ध्यान करना चाहिए। ध्यान केवल भगवान का ही करना चाहिए। ध्यान की वस्तु को बदलना नहीं चाहिए। ध्यान सदैव हृदय के भीतर ही करना चाहिए। मन की आँखों से ज्योतिर्मय रूप देखना चाहिए। जिधर हमारा मुँह है, इष्ट का मुँह भी उधर ही देखना चाहिए। इष्ट को हृदय में जीवन्त ज्योतिर्मय रूप में देखना चाहिए।

प्रारम्भिक अवस्था में ध्यान करते समय जीवन में हम जो कार्य करते रहते हैं, वे भोग-विषय ही हमारे मन में आते रहते हैं। लेकिन हमें उस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। उनकी शान्त मन से उपेक्षा कर उनसे उदासीन हो जाना चाहिए। ध्यान करने के पहले अपने गुरु और इष्ट से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभु ! मेरा मन खाली कर दो और अपने स्वरूप में एकाग्र कर दो। ध्यान के लिये शोर-गुल, आवाज बहुत बड़ी बाधा है। यद्यपि बाहर की बाधा की अपेक्षा भीतर की बाधा ही मनुष्य को अधिक अशान्त करती है। हमारा अन्तिम लक्ष्य तो हमारे इष्ट में एकाग्रता, उनमें तन्मयता ही है, जिसमें ध्यान अधिक सहायक होता है। कई बाधाएँ होने पर भी ध्यान करना असम्भव नहीं है। कठिनाइयाँ आएँगी, फिर भी ध्यान का अभ्यास करते रहना चाहिए। कठिनाइयों से भी शिक्षा मिलती है। श्रीठाकुर को प्रकाशमय देखना चाहिए। ध्यान में सबसे बड़ी सहायता है अपना इष्ट-मंत्र। मन्त्र को स्वर्णाक्षर में लिखा हुआ देखना चाहिए। कब तक ध्यान करना पड़ेगा? जब तक श्वास चल रहा है, तब तक ध्यान करना पड़ेगा। जीवन में जो घटनायें घटती हैं, उनसे विक्षुब्ध नहीं होना चाहिए। घटनाओं से उदासीन रहें और अपने मन को शान्त रखकर इष्ट-चिन्तन करें, इष्ट-नाम का जप करे और इष्ट का ध्यान करें।

नाम-स्मरण सबसे अच्छा उपाय है। जप करना चाहिए जपात् सिद्धिः। भगवान का नाम-स्मरण और भक्ति करने के लिए थोड़ा समय बचा के रखना चाहिए। हमारी भगवान के प्रति निर्भरता हो। कालक्रम से शरीर दुर्बल हो जाता है, इसलिये युवावस्था से ही भगवान का नामस्मरण और उनकी भक्ति करनी चाहिए।

जीवन में सुनियोजित योजनायें बनाएँ। साधक हैं, तो साधक के समान दिनचर्या बनाएँ। अपने जीवन का सदुपयोग कैसे होगा, वैसी योजना बनाएँ और वैसा कार्य करें।

साधक जीवन में साधना के साथ-साथ दूसरों की सेवा करें। सबके कल्याण की बात सोचें। साधना और सेवा करने से कभी-कभी साधकों के मन में अहंकार आ जाता है, जिससे हमारी सारी साधना व्यर्थ हो जाती है। अतः हमेशा विनम्र और निरहंकारी बनें, शालीनता से रहें, दूसरों से सदा सद्व्यवहार करें। सज्जनता का आचरण करें। यदि हम स्वयं आदर्शमय जीवन यापन करेंगे, तो दूसरे भी हमें देखकर सीखेंगे। तभी हमारे जीवन में साधना और व्यवहार में मेल होगा। क्योंकि हम जो बातें पढ़ते हैं, सुनते हैं और बोलते हैं, उन्हें हमें आचरण में लाना चाहिए। ○○○

ईशावास्योपनिषद (१७)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

यहाँ पर भी ठीक उसी प्रकार साधक अनुरोध कर रहा है। यह प्रार्थना चली। उसके बाद सोलहवें मंत्र में वही प्रार्थना, आकुलता और बलवती हो रही है। वह कह रहा है –

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।।१६।।

यहाँ साधक प्रार्थना के स्वर में कह रहा है – यहाँ पोषण करनेवाला सूर्य एक प्रतीक है, सूर्य ब्रह्म का प्रतीक है। तो मानों यहाँ पर सम्बोधित करते हुए कहता – हे पूषन्! तुम जगत् के पोषणकर्ता हो। जैसे हम विपत्ति में होते हैं, तो भगवान को कितने नामों से पुकारते हैं! हे कृष्ण! हे मुरारि! हे दयानिधे! हे मुरलीधर! हे श्यामसुन्दर! हे नन्दनन्दन! जब आकुलता बढ़ती है, तो हम भगवान के जितने नाम मानसपटल पर आते हैं, उन सभी नामों को लेकर पुकारते हैं। साधक भिन्न-भिन्न नाम लेकर के जो पुकार रहा है, यह मानो उसकी व्याकुलता का परिचायक है। उस प्रभु का एक गुण जैसे हम कहते हैं – हे मुरारि! इसका मतलब क्या है? तुमने उस शत्रु का वध किया, इसलिए तुम मेरे भी शत्रु का वध करने में समर्थ हो! यही तो भाव रहता है। जब हम भगवान को इस प्रकार से पुकारते हैं, तो मानो उसके पीछे का तत्त्व यही है। तुमने उस गज को मोक्ष दिलाया, गज की रक्षा की, मैं भी इसी प्रकार विपत्ति में पड़ा हूँ प्रभो! तुम मेरी भी रक्षा करो।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न नामों से, प्रभु के भिन्न-भिन्न गुणों का स्मरण और चिन्तन के द्वारा मानों हम ईश्वर को स्मरण दिलाते हैं कि प्रभो तुमने इसकी रक्षा की, तुमने उसका उद्धार किया। यहाँ पर भी वही बात है। वह साधक सत्य को जानना चाहता है। वह कहता है - हे पूषण! हे एकर्षे! तुम्हीं तो जगत में अकेले चलते हो, तुम्हें तो किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं है, पर मैं तो तुम्हारी अपेक्षा रखता हूँ। मुझे तो तुम्हारा साथ चाहिए। मैं तो तुम्हारे साथ के बिना बिलकुल अकेला हो जाऊँगा। हे यम! तुम संसार का नियमन करते हो प्रभो! मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि जो चमक-दमक दुनिया की दिखाई दे रही है, इसका तुम मेरे प्रति नियमन कर दो, इस चमकीले सुनहले पर्दे को हटा दो। हे प्राजापत्य! तुम प्रजापति के नन्दन हो, प्रजापति के पुत्र हो। हे व्यूह-रश्मिन्! तुम अपनी रश्मियों को समेट लो। सूरज कितना चमकीला है! और इस चमकीले सूरज के पीछे जो तत्त्व है, जो ब्रह्मतत्व दिखाई नहीं देता है, वह कितना चमकीला होगा! सूरज के पीछे क्या हो सकता है? यह जो सूरज चमक रहा है, किसकी ज्योति से चमक रहा है? हमने उस दिन वह श्लोक कहा था न! भयात्तस्य अग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः – उसी के भय से यह सूर्य तप रहा है। न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकः नेमाविद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।। पर उस तत्त्व को सूरज प्रकाशित नहीं कर पाता, बल्कि यह सूरज ही उसकी रोशनी से प्रकाशित होता है। तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति। उस ब्रह्मतत्त्व के प्रकाशित रहने के कारण ही सूरज प्रकाशित होता है, चन्द्रमा प्रकाशित होता है, तारे प्रकाशित होते हैं, फिर इस अग्नि की क्या बात है? अतः हे पूषन्! मैं उस तत्त्व को देखना चाहता हूँ, जिसके कारण तुम चमक रहे हो। तुम्हारी ज्योति कहाँ है? तुम्हारी ज्योति का उत्स कहाँ है? तुम्हारे प्रकाश का उत्स कहाँ है? तुम जो इतना प्रकाश देते हो, यह तुम्हारा नहीं है। तुम भी किसी के द्वारा प्रकाशित हो रहे हो, मैं उस प्रकाश को देखना चाहता हूँ। पर तुम्हारी तेज किरणों के कारण मैं देखने में समर्थ नहीं हूँ, तो तुम क्या करो? व्यूहरश्मि – अपनी किरणों को समेट लो। समूहतेजः – इस तेज को जरा मन्द तो करो, इस तेज को समेटो, किरणों को समेटो। मैं तुम्हारे उत्स को देखना चाहता हूँ।

बड़ी विलक्षण बात है! इस प्रकार यह सत्यधर्मा भिन्न-भिन्न नाम लेकर पुकारता, प्रार्थना करता है कि हे पूषन्! तुम्हारे पीछे ब्रह्म का, आत्मतत्त्व का प्रकाश है, तुम पोषण करनेवाले, अकेले जाते हो, तुम सब कुछ का नियमन करते हो, तुम सूर्य हो, माने प्राणों को खींचते हो, रस को तुम

खींचते हो। सूर्य का शाब्दिक अर्थ है, जो प्राण और रस का शोषण करता है। सूर्य शोषण करता है, प्राण का शोषण करता है, रस का शोषण करता है, तुम प्रजापतिनन्दन हो। मैं जानना चाहता हूँ, तुम किस तत्त्व के द्वारा इतने प्रकाशित हो। कृपा करके अपनी किरणों को, अपने तेज को समेट लो।

जब व्याकुल होकर के उसने प्रार्थना की, तो उसका क्या फल हुआ? धीरे-धीरे वह उस तत्त्व को देखने में समर्थ होता है। उसे दर्शन होता है। क्या दर्शन होता है? यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि – वह साधक कहता है - ओ! तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणमय रूप है, उसको मैं देख रहा हूँ। यहाँ उस दर्शन की बात कही गयी।

उसके बाद क्या प्रतीति होती है? योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि। यह विलक्षण अनुभूति है! विलक्षण यह प्रतीति है! वह कहता है कि तुम्हारे पीछे जो तत्त्व प्रकाशित है, जिसके प्रकाश से तुम प्रकाशवान हो रहे हो, अरे वह तो मैं ही हूँ। मैं जानता ही नहीं था कि मैं ही था, उस प्रकाश के रूप में जो तुम्हें प्रकाशित कर रहा था। यह विलक्षण अनुभूति का क्रम है। मानो पहले सविकल्प समाधि और उसके बाद निर्विकल्प समाधि है! सविकल्प समाधि में मैं कल्याणमय रूप को देखता हूँ, जो संसार को प्रकाशित करता है, सूर्य को प्रकाशित करता है, चन्द्र को प्रकाशित करता है, तारों को प्रकाशित करता है, उसके पश्चात् जब मैं गहरे ध्यान में डूबा, तो मैं देखता हूँ कि मैं ही तो हूँ, जो सबको प्रकाशित कर रहा है। सूरज के पीछे जो तत्त्व है, वह मैं ही हूँ।

क्या विलक्षण है इसमें? एक छोटे-से मन्त्र में साधना का भी क्रम है और उसके बाद दर्शन का भी क्रम है, अनुभूति का भी क्रम है कि उसने साधना की। उसके जीवन में व्याकुलता आई, उसके बाद वह दर्शन कर रहा है कि संसार में जो कुछ भी ज्योति है, प्रकाशमान है, सबके पीछे वह ब्रह्म ज्योति है, चित्शक्ति है। फिर उसने देखा कि वह चित्शक्ति तो मैं ही हूँ, वह ब्रह्म ज्योति तो मैं ही हूँ, मेरे ही प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित है। यह अद्भुत अनुभूति है और ऐसी जब अद्भुत अनुभूति हो गई, तो वह जीवन्मुक्त होकर अपने दिन बिता रहा है।

यह जीवनमुक्त की अवस्था है। उसने तत्त्व को जान लिया है। एक दिन मृत्यु तो सब पर आक्रमण करती है, शरीर पर मृत्यु का आक्रमण होता है। तत्त्व को जाननेवाला वह साधक आज मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ है। वह क्या कर रहा है? वह कितने आनन्द में है! वह पूरा सजग है। कितनी सुन्दर उसकी वृत्ति है! उसके विचारने का ढंग, चिन्तन, सब कुछ विलक्षण है! क्या कह रहा है वह? इसे सतरहवें मंत्र में बताया गया है –

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ओऽम् क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर।। १७।।

– अब मेरा प्राण वायु में विलीन हो जाय और यह शरीर भस्म हो जाय। हे मन! अब तुम अपने किए हुए कर्मों का स्मरण करो, अब तुम अपने किए हुए कर्मों का स्मरण करो।

बड़ी विलक्षण बात यहाँ पर कही गयी कि वह साधक मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ है, किन्तु निर्भय है। मृत्युशय्या पर पड़ा एक व्यक्ति डरता रहता है, मृत्यु से भयभीत होता रहता है, कलपता है कि अब मैं मर जाऊँगा, तो हमारा क्या होगा? लेकिन जिसने उस तत्त्व को जान लिया, वह नहीं डरता, वह कहता है – वायुःअनिलं ... अर्थात् इस शरीर में जो प्राणवायु संचारित हो रही है, जो अमृतस्वरूप अनिल तत्त्व है, वायु तत्त्व है, मरुत् तत्त्व है, जिसे समष्टि वायु कहते हैं, जो सूत्रात्मा है, उसमें जाकर मिल जायँ।

जैसे हम पढ़ते हैं न कि जितने भी पंचतत्त्व हैं, वे अपने-अपने तत्त्व में जाकर मिल जायँ। हम यह भी कहते हैं कि मनुष्य पंचतत्त्व को प्राप्त हो गया। इसका अर्थ यह है कि पाँच तत्त्वों से शरीर बना है, तो जब शरीर की मृत्यु हो जाती है, तो शरीर उन पाँच तत्त्वों में मिल जाता है। शरीर का हर तत्त्व अपने उस विराट तत्त्व में जाकर मिलित हो जाता है।

इसलिये वह साधक कहता है – शरीर को चलानेवाली जो प्राणवायु है, अब वह जाये। मानो वह कहता है विदा! विदा! विदा प्राण विदा! तुमने कितना मुझ पर उपकार किया है, तुम यहाँ पर विद्यमान रहे, तभी मेरे जीवन की सार्थकता हुई। तुम्हारे रहते मैंने जीवन के लक्ष्य को पा लिया। अब इसके बाद प्राण तुम्हें विदा देता हूँ। जाओ, तुम उस अमृत अनिल में जाकर के मिल जाओ, जो तुम्हारी समष्टि चेतना का स्थान है, वहाँ तुम चले जाओ । अब यह शरीर भस्म हो जाये, अग्नि में जल जाये। पंचतत्त्व तुम सबको मैं विदा देता हूँ। शरीर विदा, विदा! अलविदा! तुमने मेरा कितना उपकार किया है! इस शरीर के माध्यम से मैंने प्रभु के दर्शन किये। अपने स्वरूप के दर्शन करने में मैं समर्थ हुआ। मृत्युशय्या पर लेटा हुआ वह साधक यही चिन्तन कर रहा है। **(क्रमशः)**

समाचार और सूचनाएँ

विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में विवेकानन्द जयन्ती समारोह मनाया गया

स्वामी विवेकानन्द जी की १५६वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर ने विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए –

विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में प्रतिदिन सन्ध्या ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं –

६ दिसम्बर, २०१८ को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विषय था – **''स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में युवाशक्ति ही भारत का उत्थान कर सकती है।''** इस प्रतियोगिता में विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, विवेकानन्द विद्यापीठ की छात्रा सरस्वती कुमारी, शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय की छात्रा कुमारी बरखा नाग और दिशा कॉलेज, रायपुर के नयन गुप्ता ने प्रथम, शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय की छात्रा कुमारी नम्रता वर्मा ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री विनोद कुमार लाल ने की।

७ दिसम्बर को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी, जिसमें **'धर्म और राजनीति'** पर शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. नम्रता वर्मा ने प्रथम और **'गुमराह करनेवाले विज्ञापन'** पर दिशा कॉलेज की कुमारी स्मृति चौबे ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. राजीव चौधरी ने की।

८ दिसम्बर को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – **''इस सदन की राय में आरक्षण ही पिछड़ी जातियों के विकास के लिए एकमात्र उपाय नहीं है।''** इसमें दिशा कॉलेज, रायपुर के नयन गुप्ता को प्रथम और शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. नम्रता वर्मा को विषय के पक्ष में द्वितीय पुरस्कार मिला। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. विप्लव दत्ता ने की।

९ दिसम्बर को **'इस सदन की राय में राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान केवल राजनैतिक सुधारों की अपेक्षा सामाजिक सुधारों से ही सम्भव है'** विषय पर अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी। इसमें होली क्रास सीनीयर सेकेन्ड्री स्कूल, रायपुर की कु. श्रीप्रिया तिवारी ने पक्ष में प्रथम और विपक्ष में लक्ष्मीनारायण कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. भवानी चौधरी ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. गिरीशकान्त पाण्डेय ने की।

१० दिसम्बर को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें होली क्रास सीनीयर सेकेन्ड्री स्कूल, रायपुर की कु. श्रीप्रिया तिवारी ने **'ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत'** विषय पर प्रथम और विवेकानन्द विद्यापीठ, आदर्श आवासी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर के मनीष रत्नाकर ने **'ग्रामीण शिक्षा'** विषय पर द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. बशीर हसन जी ने की।

११ दिसम्बर को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन था। विषय था – **'शिकागो की विश्व धर्मसंसद में स्वामी विवेकानन्द का अमर सन्देश'**। इसमें होली क्रास सीनीयर सेकेन्ड्री स्कूल, रायपुर की श्रीप्रिया तिवारी ने प्रथम और शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय परिसर, रायपुर के राहुल निराला ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। सत्र की अध्यक्षता डॉ. एस. के. जाधव जी ने की।

१२ दिसम्बर, २०१८ को 'अन्तर्माध्यमिक शाला

विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का विषय था – **''स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भारत और भारतीयता क्या है?''** इसमें द रेडिएन्ट वे स्कूल, रायपुर की कुमारी विभूति शुक्ला ने प्रथम और श्रीरामकृष्ण विद्यालय, रायपुर की छात्रा कुमारी श्रुति मिश्रा ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. सुपर्णा सेनगुप्ता ने की।

१३ दिसम्बर को 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' थी। विषय था – **''इस सदन की राय में परस्पर जाति-विद्वेष ही भारत की प्रगति में बाधक है।''** इसमें श्रीरामकृष्ण विद्यालय, रायपुर की आराध्या पाण्डेय ने पक्ष में प्रथम और विवेकानन्द विद्यापीठ, आदर्श आवासी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर के छात्र धर्मेन्द्र और दीपेन्द्र बारले ने पक्ष में ही द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. संजय कुमार ने की।

१४ दिसम्बर को 'अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता' थी। इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ आदर्श आवासी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, कोटा, रायुपर के छात्र तर्ण कुर्रे ने प्रथम और वीर छत्रपति शिवाजी इंगलिश मिडियम स्कूल, रायपुर की छात्रा उन्नति शर्मा ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. सुभद्रा राठौर ने की। सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन एवं संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया ।

राहत कार्य – ३० दिसम्बर, २०१८ को रायपुर जिले के नवागाँव में ७०कम्बल, ६० साड़ियाँ और ५० छोटे-छोटे बच्चों के कम्बल वितरित किये गये।

विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण समारोह

२ जनवरी, २०१९ बुधवार को सन्ध्या ६.३० बजे 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह' का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण समारोह सम्पन्न हुआ। सभा के मुख्य अतिथि छत्तीसगढ़ के विज्ञान और प्रौद्योगिकी परिषद के महानिदेशक डॉ. के. सुब्रह्मण्यम् जी थे। विशिष्ट अतिथि रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी, विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने सभा की अध्यक्षता की। विजेता छात्र-छात्राओं को मुख्य अतिथि के करकमलों से पुरस्कार प्रदान किया गया। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने आगत अतिथियों का स्वागत किया, मंच संचालन स्वामी देवभावानन्द जी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया

१२ जनवरी, २०१९, शुक्रवार को पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर और विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में विश्वविद्यालय प्रांगण में 'राष्ट्रीय युवा दिवस' मनाया गया। इसमें शहर की राष्ट्रीय सेवायोजना की इकाई, विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्र और अन्य महाविद्यालयों के छात्र-छात्राओं ने स्वामी विवेकानन्द जी को श्रद्धांजलि अर्पित की। प्रात: ९.१५ बजे विश्वविद्यालय में प्रशासनिक भवन के सामने स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति पर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. केशरीलाल वर्मा, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, कुलसचिव श्री सन्दीप वन्सुत्रे और कार्यक्रम समन्वयक नीता वाजपेयी आदि ने पुष्प अर्पित किए। उसके बाद विश्वविद्यालय के प्रेक्षागृह में 'विवेकानन्द का जीवन-दर्शन' पर डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, प्रो. केशरीलाल वर्मा और स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने बच्चों को सम्बोधित किया। उसके बाद ११.३० से १ बजे तक श्री दामोदर रामदासी ने स्वामी विवेकानन्द पर एकांकी नाटक प्रस्तुत किया। नीता वाजपेयी ने सबका स्वागत और ऋजुता शर्मा ने कार्यक्रम का संचालन किया। सबको स्वादिष्ट अल्पाहार और स्वामीजी की पुस्तिका प्रदान की गई।

भजनांजलि – ८ जनवरी, २०१९ प्रात: १०.३० स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती जी ने श्रीरामकृष्ण मंदिर में भजनांजलि प्रस्तुत की।

रामायण प्रवचन – स्वामी विवेकानन्द जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में ४ जनवरी से ९ जनवरी २०१९ तक श्रीरामकथा के विख्यात संगीतमय प्रवचनकर्ता मानस मर्मज्ञ स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'श्रीराजेश रामायणीजी' ने आश्रम-प्रांगण के भव्य पांडाल में 'श्रीभरतचरित' पर सरस तात्त्विक उत्कृष्ट प्रवचन दिये। ○○○